आदर्श बालक

लेखक

चतुरसेन शास्त्री

हिन्दी मन्दिर, प्रयाग

प्रकाशक

हिन्दी मन्दिर, प्रयाग

दूसरी बार १९४७

मूल्य

एक रुपया

मुद्रक

हरनामदास गुप्ता,

भारत प्रिंटिङ्ग वर्क्स,

चर्खे वालान, दिल्ली

विषय सूची

१.	वीर बादल	१
२.	कुमार सिद्धार्थ	१३
३.	कुनाल	१७
४	राजकुमार चूड़ाजी	२३
५.	वीर बालक हक़ीक़त राय	३१
६.	अभमन्यु	३८
७.	उपमन्यु	४४
८.	पितृ भक्त श्रवन	४८
९.	प्रल्हाद	५१
१०.	बालक दुर्गादास	६५
११.	स्कूल के सहपाठी	६८
१२.	अंग्रेज़ वीर बालक	७३
१३.	बालक ऐडीसन	८०
१४.	बुकर टी० वाशिंटन	८३
१५.	उत्तङ्क	८८
१६.	चन्द्रहास	९५
१७.	गरुड़जी	१०१
१८.	ध्रुव	१०९
१९.	गुरु भक्त मोहन	११६
२०.	फ़त्ता सिसोदिया	११९
२१.	पांच पांडव	१२२

: १ :

वीर बादल

तेरहवीं शताब्दि बीत रही थी। निर्दयी और इन्द्रिय लोलुप पठान अलाउद्दीन खिलजी भारत का सम्राट था। उसने अपनी दुर्धर्ष सेना के बल पर राजपूताना को कुचल डाला था, और अब वह राजपूताने की बची-खुची आबरू को लूटने को दलबल लेकर चित्तोर पर चढ़ आया था। चित्तौर पर दुर्भाग्य उदय हुआ था इस बार उसका इरादा चित्तौर-विजय का न था प्रत्युत चित्तौर की महारानी पद्मिनी को हरण करने का था। चित्तौर की आन्तरिक अवस्था अच्छी न थी, राणा लक्ष्मणसिंह नाबालिग थे और उन के चचा भीमसिंह चित्तौर के कर्ताधर्ता थे, पद्मनी भीमसिंह की पत्नी थी वह पद्मराग मणिके समान सुन्दर और कान्ति वाली थी उसके सौन्दर्य की तारीफ़ राजपूताने भर में फैली हुई थी और सौन्दर्य-लोलुप अलाउद्दीन पूरी शक्ति से उस सौन्दर्य कुसुम को लूटने चित्तौर पर चढ़ दौड़ा था

क़िला चारों ओरसे घिरा हुआ था और किसी भी आदमी का क़िले से बाहर जाना या बाहर से भीतर आना सम्भव न था। क़िले में खाद्य-सामग्री अभी इतनी थी कि वर्षों घेरा पड़ा रहने पर भी उसकी कमी न होती परन्तु पानी का अभाव था। लोगों ने प्रथम स्नान आदि बन्द किये अब पीने में भी किफ़ायत पर नौबत आ पहुँची अलाउद्दीन को चित्तौर को घेरे ६ मास हो चुके थे। क़िला फ़तह होने की कोई युक्ति उसे सूझ न पड़ती थी। भारतीय राज-नीति का वातावरण उस समय अत्यन्त क्षुब्ध था, मालवा, गुज-रात, बंगाल और दिल्ली से अशान्ति पूर्ण खबरें आरही थीं अला-उद्दीन ने समझा कि इस सौन्दर्य की देवी के पीछे कहीं हिन्द का तख्त ही न खोना पड़े, वह जल्द-से-जल्द चित्तौरके मामलोंको खत्म करने का मन्सूबा गाँठने लगा। मन-ही-मन उसने कपट का जाल बिछाया और फिर सुलहका झंडा लेकर क़िलेमें सम्वाद भेज दिया।

सुलह का झंडा देख फाटक खुल गया। दूत भीत मुद्रा से क़िले में गया। विकट आकृति राजपूत उसे सन्देह और क्रोध से देख रहे थे उसने राणा भीमसिंह की राजसभा में जाकर विनय-पूर्वक यह निवेदन किया कि सुलतान चित्तौर के राणा से बराबर की दोस्ती करना चाहते हैं, उनकी मन्शा न चित्तौर छीनने की है न महाराणी को हरण करने की। अगर महाराणा अपनी दोस्ती का सबूत दें तो सुलतान अभी दिल्ली को लौट जायँगे। दोस्तीके सबूतमें सुलतान यह चाहते हैं कि उन्हें सिर्फ एक बार महाराणी की झलक दिखा दी जाय। और कुछ नहीं।

गर्वीले राजपूतों को इस दूत का यह प्रस्ताव अत्यन्त अपमान-जनक प्रतीत हुआ, उन्होंने तलवारें खींच लीं, और भाँति-भाँति के कुवाक्य दूत और सुलतान को कहे। प्रत्येक राजपूत इस अपमान के बदले प्राण देने को तैयार था, पर राणा भीमसिंह गम्भीर चिंता में निमग्न हो गये थे। उनके ऊपर चित्तौर की रक्षा एवं हजारों राजपूतों की जीवन रक्षा का दायित्व था, उन्होंने सोचा—क्या सर्वनाश से बचने के लिये यह अपमान सह लिया जाय। उन्होंने मन्त्रियों से, सर्दारों से भाई-बन्दों से और दर्बारियों से परामर्श किया और रानी पद्मिनी से भी सब हक़ीक़त कह दी। रानी ने साहस पूर्वक कह दिया कि यदि मेरा यह अपमान करके वह दैत्य टल जाय और चित्तौर की हज़ारों बहू-बेटियां विधवा होने से बच जायँ तो मैं अपनी आबरू का बलिदान देने को तैयार हूँ, परन्तु प्रत्यक्ष नहीं—दर्पण में ही वह पशु मेरी छवि की एक झलक देख सकता है।

राणा भीमसेन ने सभासदों को सब ऊँच-नीच समझा कर अन्त में प्रस्ताव की स्वीकृति दूत को दे दी। उन्होंने यह शर्त की-कि सुलतान अकेले निशस्त्र किले में आवेंगे और दर्पण में महारानी की एक झलक देख कर तुरन्त लौट जावेंगे, तथा तुरन्त ही चित्तौर का घेरा उठा लेंगे।

अलाउद्दीन ने राणा की इस उदारताकी बड़ी तारीफ़ की और मित्रता की बहुत लम्बी-चौड़ी बातें राणा के पास भेजीं। ठीक समय पर वह निशस्त्र अकेले क़िले में आ पहुँचा।

२

सुलतान का प्रस्ताव अभूतपूर्व था, और वह विश्वासी व्यक्ति न था। क़िले का प्रत्येक राजपूत इसे अपना जातीय अपमान समझे हुए था। परन्तु राणा अपने विचार पर दृढ़ था वह गम्भीर और मौन था—आज महलों में अद्भुत गम्भीरता छाई हुई थी, राजपूत बड़ी-बड़ी काली डाढ़ियों के बीच दाँतों की बत्तीसी भींचे सम्पुटित होंट किये बड़ी-बड़ी ढाल कन्धे पर, तलवारें म्यान में किये लाज और अपमान से नीचे आँखें किये खड़े थे, सुलतान सबके बीच साहस और उत्साह की मूर्ति बना धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा था। राणा ने क़िले के फाटक पर उसका स्वागत किया था। राजपूतों के बचन पर उसे भरोसा था। वह निशस्त्र तथा एकाकी था। वह चपल घोड़े पर सवार था। उसकी बांई ओर राणा चुप-चाप एक घोड़े पर सवार आगे बढ़ रहा था, और पीछे चुने हुए सवार थे। सुलतान अपनी मित्रता और प्रसन्नता प्रकट करने के लिये बहुत सी बातें करता जाता था।

ज़नानी ड्योढियों पर सब घोड़े से उतर पड़े। वे उन सीढ़ियों पर चढ़े जहाँ किसी यवन के पांव नहीं पड़े थे, रजपूत क्रोध से एवं बाँदियाँ भय से थर-थर कांप रही थीं, सन्नाटा था, बिरद गाने वाले चुप बैठे थे, डाढ़िनें मुँह पर घूँघट डाले सिमटी खड़ी थीं। नौबत खाने के नक्क़ारे औंधे पड़े थे।

सुलतान ने कहा—'महाराणा आज से हम दोनों दोस्त हुए, हुए न, कहिये ?

महाराणा ने खिन्न मन होकर धीरे से कहा—सुलतान की यदि यही इच्छा है तो मैं वचन देता हूँ कि राजपूत हमेशा सच्ची दोस्ती निभाहेंगे।

इसका मुझे पूरा भरोसा है, आप देखते हैं कि आप पर यक़ीन करके ख़ाली हाथ आपके क़िले में आगया हूँ। उम्मीद है आप भी मुझ पर भरोसा करेंगे।

राणा ने गम्भीर स्वर में कहा—तो क्या सुलतान मित्रता की ओर इतना क़दम उठा कर भी वह अपमान जनक काम करने का इरादा रखते हैं जो राजपूतों के लिये बिलकुल नया है।

यक़ीन रखिये महाराणा, मेरी नियत कुछ बुरी नहीं, जैसा हम लोगों में क़ौल-क़रार हुआ है, उसके पूरा होते ही मैं तुरन्त दिल्ली लौट जाऊँगा।

राणा ने ठण्डी साँस लेकर एक बार सर्दारों की ओर देखा—वह नीची आँखें किये खड़े थे, फिर उसने चाँदी की भाँती सफ़ेद महलों के आकाश को छूने वाले सुनहरी कंगूरों को देखा जो सूर्य की धूप में चमक रहे थे, तब सूर्यवंश के उस अधिकारी ने एक ठण्डी साँस ली और कहा—तब आइये राजपूत अपनी बात पूरी करेंगे।, दोनों आगे बढ़े, दो क़दम बाद सुलतान झिझककर खड़ा हो गया, उसने देखा—सामने पूरे क़द के आइने में वह अलौकिक सुन्दरी—जैसे रत्नों से जड़ी तस्वीर हो—लाज से सिर नवाये खड़ी है, एक झलक सुलतान ने देखा, और वह झलक दर्पण से ग़ायब हो गई, सुलतान निश्चल होगया, इस सौन्दर्य की उसने कल्पना

भी नहीं की थी—महाराणा ने कम्पित कण्ठ से कहा—राजपूतों का बचन पूरा हुआ, अब सुलतान को अपना बचन निभाना चाहिये।

सुलतान चौंका और सोते से जागे हुये मनुष्य की भाँति उस ने कहा—'हाँ, हाँ, जरूर अब मुझे आपकी दोस्ती पर यक़ीन हो गया महाराणा, दरहक़ीक़त मैं आप को मुबारक बादी देता हूँ, आपकी महाराणी इन्सान नहीं हैं, इसान में इतनी खूबसूरती नहीं हो सकती।

राजपूत धीरज खो रहे थे—राणा ने अधीर होकर कहा—राजपूती मर्यादा को निभाने के लिये, सुलतान जैसे प्रतिष्ठित महमान को विदा करने हम बाहर की ड्योढ़ी तक चलेंगे, परन्तु सुलतान अपना वचन कब पूरा करेंगे।

'मैं अभी अपनी छावनी उठाता हूँ, सुलतान ने वापस लौटती बार कहा।

वे धीरे-धीरे चुपचाप लौट रहे थे, सिर्फ़ घोड़ों की टाप सुनाई दे रही थी। दोनों चुप थे राणा उस अपमान की बात सोच रहे थे, जो अभी हो चुका था और सुलतान उस घात की जो वह अभी करने वाला था।

फाटक आ पहुँचा, राणा ने कहा—मैं सुलतान के कष्ट करने के लिये क्षमा माँगता हूँ।

'नहीं, नहीं माफी मुझे माँगनी चाहिये, क्योंकि मैं ने आपको बड़े भारी तरद्दुद में डाल दिया, मगर ख़ैर, इस मे हमारी और

आपकी दोस्ती पक्की हो गई। अरे, आप रुक क्यों गये ज़रा और आगे चलिये, वहाँ मेरे आदमी हैं, मैं आपके लिये कुछ सौग़ात लाया हूँ जो आप को क़ुबूल करनी होगी. आशा है आप इन्कार नहीं करेंगे ।

राणा झिझका, पर आगे बढ़ा ! उसने कहा आप की दोस्ती ही मेरे लिये सब से बड़ी सौग़ात है ।

सुलतान ने अत्यन्त आग्रह से कहा—'नहीं, नहीं, आप अगर इन्कार करेंगे तो मैं समझूँगा कि आपका दिल मेरी तरफ़ से साफ़ नहीं है ।

फाटक क़दम-क़दम पर दूर हो रहा था, राणा कुछ कह न सके। एकाएक पठानों का एक बड़ा दल जँगल से निकल आया, और बात-की-बात में राणा को घेर लिया। राणा तलवार भी न निकाल पाया, उस की मुश्कें कस ली गई। राणा ने लाल-लाल आँखें करके कहा—"यही सुलतान की दोस्ती है।"

दोस्ती ? क़ाफ़िर की और दीनदार की कैसी दोस्ती ? या तो वह परी पैकर मेरे हवाले कर, वरना चित्तौर की ईंट-से-ईंट बजा दूँगा. और तेरी बोटियाँ चील कौवे खायेंगे ।

राणा ने घृणा पूर्ण-दृष्टि से देखकर कहा—"धिक्कार है तुझ विश्वासघाती पर ।

सुलतान ने कहा—लेजाकर बन्द कर दो बदबख्त को और वे तेज़ी से चल दिये।

३

क़िले में हा-हा कार मच गया राजपूतों ने तलवारें मंत लीं। सबने इरादा किया, क़िले का फाटक खोल दो और जूझ मरो। पद्मनी ने सुना, और कहलाया--सब कोई शान्त रहें मैं राणा की मुक्ति का उपाय करूँगी, लोग आश्चर्य-चकित हो, महाराणा की मुक्ति की प्रतीक्षा करने लगे।

"बादल क्या तुम अपने काकाजी को छुड़ाने का साहस कर सकते हो?"

हाँ काकी जी. मैं अभी अपने प्राण दे सकता हूँ।"

"परन्तु बेटे शत्रु छली और बली है हमें भी छलबल से काम लेना होगा?"

छलबल से कैसे काकी जी।"

"मैं सुलतान से कहलाये देती हूँ कि मै स्वयं उसके पास आने को राज़ी हूँ आप राणा को छोड़ दें"

"छी, छी, काकी क्या आप उस मलेच्छ सुलतान के पास जावेंगी?"

"नहीं बेटे! मेरी जगह, मेरी डोली में तुम जाओगे?"

"क्या मैं?"

"हाँ तुम तुम मेरी जगह, यद्यपि तुम अभी १२ वर्ष के बालक हो पर क्षत्रिय-पुत्र को जूझ मरने के लिये यह उम्र काफ़ी है। तुम यह काम कर सकोगे?"

"मुझे क्या करना होगा?"

तुम सब हथियार बाँध कर मेरी पालकी में बैठोगे। पालकी के साथ ७०० डोली मेरी महेलियों की होंगी प्रत्येक डोली में बाँदी की जगह दो-दो शूरवीर हथियार बाँधकर बैठेंगे और चार-चार शूरमा कहार का भेष धरे डोली उठायेंगे जिनके हथियार कपड़ों में छिपे रहेंगे।

"इसके बाद, काकी जी।"

"इसके बाद रानी-राणासे अकेले में भेंट होगी। पास में तुम्हारे काका गोरा घोड़े पर सवार होंगे वे तुरन्त ही राणाजी को घोड़ा हथियार दे देंगे और क़िले की ओर चलता कर देंगे. फिर तुम डोली से निकल कर अपने राजपूती हाथ के जोहर दिखाना।"

ऐसा ही होगा काकी जी, हम सुलतान को दग़ाबजी का वह पाठ पढ़ावेंगे जिसका नाम।"

"तब जाओ बेटे, अपने गोरा काका से कहो वह सुलतान से कहला भेजें कि—रानी आपके पास आने को राज़ी है मगर वह अपनी बाँदियों और सहेलियों के साथ आवेंगी। उन्हें परदे में उतारने का बन्दोबस्त कीजिये, और राणा को छोड़ दीजिए तथा रानी को एक घंटे राणा से एकान्त में मिलने की आज्ञा मिलनी चाहिए, बस।

"समझ गया। अभी जा कर गोरा चाचा से सब हक़ीक़त कहता हूँ।

"जाओ पुत्र, ईश्वर तुम्हें सफलता दें।

सुलतान की छावनी में जश्न मनाया जा रहा था उसे ख़बर

लग चुकी थी कि पद्मनी अपने महल से चल चुकी है वह पहाड़ से उतरती हुई डोलियों की क़तारें देख-देखकर खुश हो रहा था। वह अपनी चालाकी पर खुश था। एक-एक क्षण उसका कठिनाई से बीत रहा था सिपाही शराब ढाल रहे थे और नाच-गान में मस्त थे। किसी को किसी की सुध न थी।

धीरे-धीरे डोलियाँ पठानों के शिविर में आगईं और वे सब एक बड़े से तम्बू में उतार दी गईं। रानी ने कहला कर भेजा—अब आप एक घण्टे के लिये राणा से एकान्त में मिलने की इजाज़त दे दें—इसके बाद तो मैं आप की हूँ ही।

बादशाह ने हँसकर कहा—"अच्छा, अच्छा इसमें कोई हर्ज नहीं है राणा अच्छा आदमी है, मगर एक घण्टे बाद मैं फिर कुछ न सुनूँगा।

× × × ×

यह मैं क्या देख-सुन रहा हूँ, अच्छा होता इससे पहले ही मर जाता। पद्मनी, तुम से एसी आशा न थी अब तुम मुझे अपना मुँह दिखाने का साहस करती हो; राणा भीमसिंह ने क्रोध से थर-थर काँपते हुए पालकी के सुनहरी काम के पर्दे की ओर अग्निमय नेत्रों से देखते हुए कहा।

पर्दा हिला ! और बादलने मुँह निकाल कर कहा--'काका जी, "सावधान ?

"कौन तुम हो बादल।

"जी हाँ, और सातसौ डोलियों में जुझाऊ वीर भरे हैं, हम

सुल्तान से निबट लेंगे । बाहर गोरा काका घोड़ा लिए खड़े हैं आप घोड़े पर चढ़ क़िले में जा पहुँचे । और फिर सेना लेकर मुलतान की सेना पर टूट पड़ें तब तक हम निबट लेंगे । लीजिए तलवार ।

शाबाश बेटे, हम आज दग़ाबाजी का......

"चुप ......ज्यादा बातें न कीजिए । खीमे के पीछे घोड़ा खड़ा है, आप जाइये हम शत्रुओं को रोकते हैं । बादल पालकी से निकल कर खड़ा हुआ, संकेत होते ही हजारों राजपूत हर-हर करके तलवारें सूंतकर निकल पड़े । रङ्ग-में-भङ्ग पड़ गया । छावनी में उथल-पुथल मच गई । जो जहां था वहीं काट डाला गया । तैयारी का अवसर ही न था, मारो-मारो की आवाज़ ही सुनाई पड़ती थी घायलों की चीत्कार, मरते हुओं की कराहने की आवाज और राजपूतों की हर-हर महादेव तथा पठानों की अल्लाहो-अकबर की तुमुल-ध्वनि हो रही थी, रुण्ड-मुण्ड कट-कटकर गिररहे थे । राणा भीमसिंह तीर की भांति क़िले की ओर जा रहे थे, क़िले पर राजपूत तलवारें झनझना रहे थे

बादल को पठानों ने घेर लिया था पर वह बालक क़िले के नीचे पथपर खड़ा दोनों हाथों से तलवार चला रहा था । गोरा ने तलवार चलाते-चलाते कहा—"वाह बेटे, खूब खेत काट रहे हो ?

"सावधान काका जी, वह पीछे से वार होता है ।

तलवार चलाते-चलाते गोरा ने कहा—हर्ज नहीं, राणा महल में पहुँच गये, वह तोप छुटी ।

तलवारें और तीर बरस रहे थे, गोरा ने कहा—बादल ! अब मेरे हाथ नहीं चलते।

"बादल ने कहा—काका जी हम उस लोक में मिलेंगे। गोरा घाव खाकर गिर पड़े। बादल ने देखा और शत्रुओंको चीरते हुए ज़ोर से उनके कान के पास पुकारा, मैं काकीजी से आपकी वीरता का बखान करूँगा, महाराणा सेना लेकर आ रहे हैं।

राणा ने आते ही शत्रुओं को गाजर मूली की भांति काटना शुरू कर दिया। शत्रु के पैर उखड़ गये। सुलतान पिटे-कुत्ते की तरह सब सामान छोड़कर भागा। उसकी छावनी जला दी गई। बादल के शरीर पर अनगिनत घाव थे। उसके मुमूर्ष शरीर को महलों में लाया गया। शरीर से एक-एक बूंद रक्त निकल गया था। और उसके होटों पर हँसी की रेखा थी।

: २ :

कुमार सिद्धार्थ

सन्ध्या का मनोरम काल था पश्चिम दिशा लाल हो रही थी, गायें टल-टल टाल बजाती हुई अपने बछड़ों से मिलने की उमंग में घर लौट रही थीं, पक्षी गण उड़-उड़ कर बसेरा लेने जा रहे थे।

कपिलवस्तु नगर के बाहर राजोद्यान में दो राजकुमार धनुष-बाण लिये, धीरे-धीरे राज-महल की ओर लौट रहे थे, एक का नाम देवदत्त था दूसरे का सिद्धार्थ पक्षियों की उड़ती पंक्ति देख कर राजकुमार सिद्धार्थ ने कहा—

'अहा, देखो भाई इन पक्षियों की पंक्ति कैसी सुन्दर लग रही है, यह राजहंस उड़े चले जा रहे हैं।

देवदत्त ने देखा, एक कुटिल हास्य किया, धनुष पर बाण चढ़ाया और राजहंसों के उड़ते समूह पर छोड़ दिया। सिद्धार्थका दिल धड़कने लगा, उसने घबराई हुई दृष्टि से आकाश की ओर देखा, एक राजहंस बाण-विद्ध होकर लोहू टपकता हुआ सुध-बुध खो तड़फता हुआ पृथ्वी की ओर आरहा था शेष चीत्कार करते हुये भयभीत हो भाग रहे थे।

देवदत्त यह देखकर हँसने लगा, पर सिद्धार्थ की आंखों में पानी भर आया। उसने दौड़कर भूमि पर छटपटाते हुए राजहंस को गोद में उठा लिया, हंस के पर में तीर घुसा हुआ था और कान में से रक्त बह रहा था। उसके जीवन की आशा न थी।

देवदत्त ने कहा—

यह शिकार मेरा है, इस पर मेरा अधिकार है।

इस पर तुम्हारा अधिकार क्यों है ?

इसलिये कि मैंने इसे मारा है।

मैंने इसे बचाया है, मारने वाले की अपेक्षा बचाने वाले का अधिकार अधिक है, जाओ मैं तुम्हें यह पक्षी न दूँगा।

कुमार ने उसके परों से तीर निकाला, घाव पर मरहम लगाया और यत्न से उसकी सुश्रुषा की, देवदत्त सिद्धार्थ पर क्रुद्ध होकर चला गया।

अन्त में कुमार के यत्न से हंस के प्राण बच गये, उसका घाव भर गया। कुमार को उससे प्रेम होगया और वह क्षण-भर भी उसे आंखों की ओट न होने देता था। देवदत्तने एक बार फिर सिद्धार्थ से हंस के लिये झगड़ा किया, और सिद्धार्थ के इन्कार करने पर क्रोध करके कहा—'अच्छी बात है इस पक्षी पर मेरा अधिकार है या तुम्हारा इस का निर्णय मैं माहाराज से कराऊँगा।

देवदत्त ने महाराज सुद्धोधन से भरी सभा में जाकर कहा—माहाराज मेरे बाण से गिरे हुये पक्षी पर मेरा अधिकार है कुमार सिद्धार्थ उसे मुझे नहीं देते कृपा कर न्याय कीजिये और मेरा पक्षी मुझे दिलाइये।

सिद्धार्थ दरबार में आये। उनकी गोद में राजहंस था, वह उनकी छाती में लगा हुआ गर्दन ऊँची करके राजदर्बार को देख रहा था और कुमार प्रेम से उसकी गर्दन पर हाथ फेर रहा था,

महाराज ने सिद्धार्थ की प्रेम भावना को देखा, परन्तु देवदत्त की माँग न्यायोचित थी आखेटपर मारनेवालेका ही अधिकार होता है।

राजा के सामने अद्भुत न्याय विषय था, सारी राज-सभा कौतूहल से इस अभियोग के निर्णय को सुनने के लिये उत्सुक थी, कुछ देर चुप रहने के बाद महाराज ने सिद्धार्थ से पूछा—"पुत्र राजहंस किस का है ?"

कुमार ने नम्रतापूर्वक कहा—"महाराज यह मेरा है !"

देवदत्त ने चटक कर कहा—नहीं, कुमार झूठ बोल रहे हैं, यह पक्षी मेरा है?"

महाराज ने गर्दन टेढ़ी करके देवदत्त से कहा—"किस तरह, तुम्हारे पास क्या प्रमाण है ?"

यह आकाश में उड़ा जा रहा था मैंने इसे बाण विद्ध किया, और यह घायल हो पृथ्वी पर आ गिरा। आप राजकुमार से ही यह बात पूछ लीजिए।

सिद्धार्थ ने कहा—महाराज देवदत्त सत्य कहते हैं।

महाराज ने तब कुमार से कहा—तब यह तुम्हारा पक्षी कैसे हो गया।

कुमार ने कहा—महाराज देवदत्त ने इसे मार गिराया था—पर मैंने इसका उपचार किया। यदि मै उपचार न करता तो यह मर गया होता देवदत्त का अधिकार इस पर तब था जब उन्होंने उसे घायल करके गिराया था पर अब मेरी सेवा से यह स्वस्थ हो चला है इस लिये इस पर अब मेरा अधिकार है।

महाराज किंकर्त्तव्य विमूढ़ बैठ गये। वे कुछ भी निर्णय न कर सके।

एक वृद्ध मन्त्री ने हाथ जोड़ कर कहा—महाराज आज्ञा पाऊँ तो कुछ निवेदन करूँ?

महाराज ने कहा—"कहो, कैसे इसका न्याय किया जाय।

मन्त्री ने कहा—दोनों राजकुमार अलग खड़े हो जायें और बीच में हंस छोड़ दिया जाय। दोनों राजकुमार उसे पुकारें पुकारने पर पक्षी जिसके पास चला जाय वही उसका मालिक है।

मन्त्री का वक्तव्य सबने स्वीकार किया। हंस को बीच सभा में छोड़ दिया गया। दोनों कुमार सभा के अलग-अलग कोनों में जा खड़े हुए। पक्षी भयभीत हो सिकुड़ कर बैठ रहा।

महाराज के कहने पर देवदत्त ने चुमकार कर पक्षी को बुलाने की अनेक चेष्टाएं कीं पर हंस ने उसकी ओर देखा भी नहीं। वह और भी सिकुड़ कर थर-थर काँपने लगा।

इसके बाद महाराज के संकेत से सिद्धार्थ आगे बढ़े सिद्धार्थके नेत्रों में प्रेम और दया का समुद्र उमड़ रहा था उन्होंने गद्-गद् कण्ठ से पक्षी को पुकारा, और पक्षी अपने घायल पंखों को घसीटता हुआ सिद्धार्थ के पैरों में जा लोटा।

राजसभा उल्लास से जय-जय कर उठी। कुमार ने पक्षी को उठाकर छाती से लगाया और सुश्रुषा करने लगा।

एक दिन स्वस्थ होकर पक्षी उड़ गया। मानो सिद्धार्थ का मनोरथ सिद्ध हो गया।

: ३ :

कुनाल

सम्राट अशोक ने प्रथम अपनी तलवार से और फिर अपनी दिव्य-दया से पृथ्वी के महान पुरुषों में अपना नाम लिखाया है। वे अपने युग में समस्त भारतवर्ष के सम्राट थे। इन्हीं के पुत्र राजकुमार कुणाल थे जो अत्यन्त रूपवान और सुशील थे। बाल्यकाल ही में कंचना नाम की एक सुन्दरी कन्या से उनका विवाह कर दिया गया था। दोनों अपने विनोद और उल्लासमय जीवन से राज-महल को आनन्दित करते रहते थे।

कुणाल को सम्राट बहुत प्यार करते थे और वे कभी उसे आँखों की ओट न होने देते थे। तिष्य-रक्षिता सम्राट की छोटी महिषी कुणाल पर मोहित थी। एक बार उसने कुणाल को एकान्त में पाकर उससे अपनी इच्छा प्रकट की, पर कुणाल ने विनयावनत होकर कहा—आप मेरी माता हैं मैं आपकी ओर नहीं देख सकता महारानी तिष्य-रक्षिता ने रूप और काम के वशीभूत हो कहा—कुमार एक बार मेरी ओर तो देखो कैसा मेरा रूप-यौवन है।

परन्तु कुणाल ने वही जवाब दिया। क्रुद्ध होकर तिष्य-रक्षिता ने कहा—अच्छी बात है। तुमने जिन आँखों से मेरा अपमान किया है-उन्हें समय आने पर नष्ट कर दिया जायगा। वह क्रुद्ध सर्पिणी की भाँति फुफकारती हुई चली गई। अवसर पाकर उसने कुणाल को महाराज से कहकर तक्षशिला भिजवा दिया, वहाँ प्रजा ने

विद्रोह किया था—पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर कुणाल तक्ष-शिला को चल दिये। विद्रोह को दमन करके पञ्जाब का शासन करने लगे। कंचना उनके साथ थी।

२

सम्राट अशोक रोगी हुए। बड़े-बड़े वैद्य यत्न करके हार गए पर महाराज को कोई लाभ न हुआ। उनके पेट में कृमि हो गये थे और सिर में बहुत पीड़ा रहती थी धीरे-धीरे सम्राट को जीवन से निराशा होने लगी।

तिष्य-रक्षिता बड़ी बुद्धिमती थी, उसने आज्ञा की कि राज्य में कोई ऐसा ही रोगी हो तो उसे लाओ, बहुत खोज ढूँढ पर एक कुम्हार मिला, जिसे वही रोग था जो सम्राट को था। महारानी ने उसका पेट चिरवा डाला। उसकी आँतों में बहुत से कीड़े निकले, रानी ने उन्हें भिन्न-भिन्न औषधियों में डाला, पर वे न मरे। जब वह लहसुन के अर्क में डाले गये तो मर गये। इस आविष्कार से रानी बड़ी प्रसन्न हुई और सम्राट से कहा—कि यदि मैं आपको आरोग्य करदूँ तो आप मुझे क्या दें।

सम्राट् ने कहा—तुम्हारे लिए मेरे पास अदेय क्या है, सारे साम्राज्य का अधिपति मैं तुम्हारे अधीन हूँ: तुम्हें क्या चाहिये।

रानी ने कहा—और कुछ नहीं, सिर्फ एक दिन का राज्य-शासन चाहिए।

सम्राट ने हँस कर कहा—जब तुम्हारी इच्छा हो एक दिन राज्य-शासन कर सकती हो।

रानी ने सम्राट् को लहसुन का अर्क देना शुरू किया, इससे थोड़े ही दिन में सम्राट् के पेट के कीड़े मर गये और उनके सिर-दर्द का रोग भी जाता रहा, थोड़े दिन में वे बलवान भी हो गये।

एक दिन रानी ने अवसर पा सम्राट् को उनकी प्रतिज्ञा की याद दिलाई और राजमुहर माँगी। सम्राट् ने उसे एक दिनके लिए समस्त भारत का साम्राज्य संचालन का भार दे दिया और राज की मुहर भी देदी।

समस्त भारत का साम्राज्य पाकर रानी ने सिर्फ एक आज्ञा-पत्र तक्षशिला के हाकिम के नाम निकाला। जिसमें लिखा था कि कुणाल की आँखें निकाल कर उसे राज्य से निकाल दो। आज्ञा-पत्र पर राज्य की मुहर कर दी गई। कुछ दिन बाद जब यह आज्ञा-पत्र तक्षशिला पहुँचा तो वहाँ का अधिकारी बहुत चिन्तित हुआ, उसे आज्ञा-पत्र पर सन्देह हुआ। वह समझ ही न सका कि कैसे सम्राट् अपने पुत्र के लिए यह भयानक आज्ञा दे सकते हैं। उसने सन्देह की निवृत्ति के लिए सम्राट् को एक पत्र लिखा। और कुणाल से भी इसकी चर्चा की।

कुणाल ने आज्ञा-पत्र को पढ़ कर कहा—राज मुहर को मैं पहचानता हूँ, आप राजाज्ञा का पालन कीजिए।

परन्तु हाकिम ने कहा—कुमार, भला मैं कैसे इस निर्दय काम को कर सकता हूँ, मैं राज-द्रोह करता हूँ आप मुझे दण्ड दीजिये।

कुणाल ने कहा—नहीं, नहीं, राजाज्ञा का उलंघन नहीं हो सकता। मैं सम्राट और पिता दोनों की आज्ञा मानकर अपनी

आँखें स्वयं निकाल देता हूँ। यह कह कर कुमार ने विषम साहस से अपनी आँखें निकाल डालीं. और अन्धा हो गया।

कंचना ने सुना तो पछाड़ खाकर धरती में गिर पड़ी, परन्तु कुणाल ने उसे धैर्य बंधाया और कहा—अब मुझे राज्य से बाहर जाना चाहिये। बहुत समझाने पर भी कंचना ने कुणाल का साथ न छोड़ा। उसने कहा—मृत्यु ही हमें अलग कर सकती है। चलो. हम इस पापी राज्य से निकल चलें, और वे दोनों राज महल से निकल गये कचना ने अन्धे राजकुमार का हाथ पकड़ा. लोग करुणा से उन्हें देख रहे थे, और वे चुप-चाप सब वैभव त्याग कर पदल जा रहे थे।

आज्ञा पालन की सूचना शासक ने भेज दी थी। जिसे मह-रानी ने ऊपर-ही-ऊपर ले लिया। और यह बात उड़ादी कि कुणाल और कंचना भिक्षु हो गये। सम्राट् को प्रिय-पुत्र के वियोग का दुःख तो हुआ, परन्तु उन्होंने यह समझ कर कि पुत्र ने धर्म-मार्ग का अनुसरण किया है सन्तोष कर लिया।

दोनों प्राणी देश-विदेश घूमते फिरे। दोनों गान-विद्या में प्रवीण थे। रूप भी साधारण न था, जहाँ जाते, भीड़ लग जाती। उनके तेज और लक्षणों से उनका राज-वंशी होना प्रगट होता था पर वे किसी को अपना परिचय नहीं देते थे।

धीरे-धीरे १५ वर्ष बीत गये। वे समस्त दक्षिण भारत का भ्रमण कर चुके थे, उनकी वासना मिट चुकी थी, वे संसार से विरत हो चुके थे। घूमते-घूमते वे बंगाल में आये। और फिर एक दिन

२० वर्ष बाद सन्ध्या समय पटने में आ पहुँचे। एक अतिथिशाला में उन्होंने डेरा डाला—और नगर में गा-गा कर भीख मांगने लगे। उनका रूप-रङ्ग सब बदल चुका था, पर उनकी आकृति में ऐसी मनोहरता थी और उनका कण्ठ स्वर ऐसा मधुर था जिसे सुनकर लोग मोहित हो जाते थे। सम्राट की गजशाला का अध्यक्ष गान-विद्या का बड़ा प्रेमी था, उसने उनका गाना सुनकर कहा—

"कौन हो भाई"

"बटोही हैं"

"कहाँ रहते हो ?"

"आज यहाँ कल वहाँ"

"कहाँ से आ रहे हो"

"योंही घूमते फिरते हैं"

उसने उन्हें डेरे में सोने की जगह दी। और दया करके भोजन भी दिया। रात भर वे आराम से सोये, प्रभात के समय कुणाल ने भैरवी की एक तान ली। सम्राट् जाग चुके थे। वह तान उनके कान में पड़ी। उन्हें ख्याल आया, कि कुणाल ऐसा ही गाता था। यह कौन गायक है। उन्होंने द्वारपाल को भेज कर गायक को तुरन्त हाजिर करने की आज्ञा दी।

दोनों ने सम्राट् के सामने आकर उनकी आज्ञा से गाना गाया।

सम्राट ने पूछा—"कौन हो !"

गरीब भिखारी हैं महाराज, लोगों को गाना सुनाते हैं, जो कोई खाने को दे देता है उसी में निर्वाह करते हैं। बात कहते-

कहते कुणाल का गला भर आया। महाराज को सन्देह हुआ, उन्होंने कहा—नहीं, नहीं, सच कहो: तुम कौन हो।

कुणाल अब अपने को न रोक सका, "मैं कुणाल हूँ, कहकर वह महाराज के पैरों पर गिर गया। सम्राट् ने उसे उठाकर छाती से लगाकर कहा—"अरे, पुत्र, तुम्हारी यह दशा कैसे हुई?"

तब कुणाल ने सब बातें कह सुनाईं। दर्बारी धन्य-धन्य कहने लगे। महाराजा अविरल आँसू बहाते रहे, पर तुरन्त ही क्रुद्ध होकर उन्होंने लाल-लाल आँखों से मन्त्री की ओर देखकर कहा—"किसने आज्ञा पत्र लिखा था।"

सब पुरानी बातों की खोज हुई। रानी ने अपना दोष स्वीकार कर लिया। सम्राट् ने तत्काल आज्ञा दी—रानी की आँखें निकाल ली जायँ और फिर उसके शरीर के एक-एक अङ्ग काटे जायँ।

दर्बार में सन्नाटा था। सम्राट् से कुणाल ने कटिबद्ध होकर कहा—महाराज, सेवक की एक प्रार्थना है।

सम्राट ने कहा—कहो पुत्र तुम्हारी प्रार्थना अवश्य पूर्ण होगी।

महाराज, पिताजी, माता को क्षमा कर दीजिए। संसार के नेत्र खोकर मैंने दिव्य दृष्टि पाई है, मैं माता का बहुत उपकृत हूँ। सभासद धन्य-धन्य कह उठे और कुणाल की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे सम्राट् ने पुत्र की प्रार्थना स्वीकार की, पर फिर उन्हें राज-पाट से विरक्ति हो गई। और उन्होंने साम्राज्य कुणाल को सौंप सन्यास ग्रहण कर लिया।

राजकुमार चूड़ाजी

मेवाड़ के महाराणा लाखा जी महावीर पुरुष थे। उन्होंने बड़े-बड़े युद्ध फतह किये, और बड़ी-बड़ी लड़ाइयां लड़ी थीं। जीवनके सब दिन व्यतीत करके अब वे वृद्ध हो चले थे। उनके सारे शरीर पर घावों के चिन्ह थे, और वे राजपूती शान के जीते-जागते अवतार थे। राणाजी के पाटवी कुमार का नाम चूड़ाजी था। चूड़ाजी में पिता के सभी गुण मौजूद थे, वे बड़े साहसी, सत्यव्रती, चतुर और विनयी थे। उनकी सत्यता की ऐसी धाक थी कि उनके मुंहसे निकली बात पत्थर की लकीर समझी जाती थी। लोग समझते थे, चाहे सूरज पश्चिम में उगे, पर चूड़ाजी की बात इधर-उधर नहीं हो सकती।

दरबार लगा था। राज्य के सब काम यथावत हो रहे थे। सब सर्दार अपने-अपने आसनों पर बैठे थे, चोबदार ने अर्ज़ की—कि मारवाड़के राव रणमल जी के पुरोहित आए हैं। राणा जी ने उन्हें दर्बार में आदर-पुर्वक ले आने का आदेश दिया। दर्बार में आकर पुरोहित ने राणाजी को आशीर्वाद दिया, और कहा—मारवाड़के राव रणमल जी ने आपकी सेवा में नारियल भेजा है। वे पाटवी-कुमार चूड़ाजी के साथ अपनी पुत्री की सगाई किया चाहते हैं। यह सुनकर महाराणा ने हँसकर अपनी सफेद डाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा—ठीक है भई, अब इस सफेद डाढ़ी वाले के लिये थोड़े

ही कोई नारियल भेजेगा। दर्बारी लोग राणा जी की बात सुनकर हँस दिये।

चूड़ाजी भी दर्बार में उपस्थित थे। राणाजी की बात सुनकर वे नीची गर्दन करके कुछ सोचने लगे। राणा ने दर्बारी लोगों से इस सम्बन्ध की सलाह ली तो सभी ने कहा—बहुत अच्छा, मारवाड़ का घराना सब भाँति उत्तम है। परन्तु जब चूड़ा जी को आगे आकर नारियल लेने और टीका कराने को बुलाया गया तो उन्होंने हाथ जोड़कर पिता से कहा—पिता जी, आपने यद्यपि हंसी में इस नारियल के लिए इच्छा प्रकट की है—परन्तु मारवाड़ की कन्या अब मेरी माता हो चुकी। उसके साथ आप ही को विवाह करना होगा।

चूड़ाजी की यह बात सुनकर सर्वत्र सन्नाटा छा गया। राणा-जी का मुँह उतर गया। वे बड़ी द्विविधा में पड़ गये। इस आयु में विवाह करना हास्यास्पद था, और नारियल लौटा देने से राव रणमल से दुश्मनी मोल ली जाती थी—जो किसी भी हालत में राणाजी को स्वीकार न था। उन्होंने तथा दर्बारियों ने चूड़ाजी को बहुत समझाया-बुझाया, परन्तु चूड़ा जी ने कहा—मैं पिता जी की आज्ञा से अभी सिर काटकर दे सकता हूँ—परन्तु मारवाड़ की कुमारी तो मेरी माता हो चुकी।

राणा जी को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने कहा—अच्छी बात है, राव रणमल का नारियल तो मेवाड़ लौट नहीं सकता। मैं ही मारवाड़ की पुत्री से ब्याह करूँगा, परन्तु चण्ड—याद रखो,

इस कुमारी से जो सन्तान होगी वही राज्य का अधिकारी होगी। तुम्हारा पाटवी पद तब न रहेगा।

पिता की इस धमकी को सुन चूड़ाजी ने हँस कर कहा—पिता जी मैं आप के चरणों की सौगन्ध खाकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं मारवाड़ की माता के पुत्र को राजा मानकर उसी भांति उनकी सेवा करूँगा जैसे आपकी करता हूँ।

चूड़ाजी की यह प्रतिज्ञा सुनकर सब दर्बारी धन्य-धन्य कर उठे। राव रणमल के पुरोहित ने भी धन्य धन्य कहा—राजकुमार के इस राज्य-त्याग की चर्चा आग की भांति राजपूताने में फैल गई। चारण लोग कविता रच-रच कर उसका बखान देश-विदेश में करने लगे।

६५ वर्ष के वृद्ध महाराणा के साथ १२ बरस की मारवाड़ के राजा की पुत्री का विवाह हो गया। और विवाह के दो बरस बाद ही उसके राज पुत्र हुआ। जिसका नाम मोकल रखा गया। धीरे-धीरे पांच साल बीत गये। इसी बीच में राणा जी को एक बड़े भारी युद्ध में जाने की आवश्यकता पड़ी। राणा जी ने सोचा—चूड़ाजी इन सात वर्षों में अपनी प्रतिज्ञा भूल गया होगा। उन्होंने चूड़ाजी को एकान्त में बुलाकर कहा—पुत्र मैं बड़े कठिन मोर्चे पर जा रहा हूँ। बुढ़ापे की उम्र है क्या जाने लौटना हो या नहीं, मैं चाहता हूँ कि तुम्हें राज-तिलक देकर और मोकल को तुम्हे सौंपकर मैं निश्चिन्त हो जाऊँ।

चूड़ाजी ने कहा—पिताजी, राजा तो मोकल ही होंगे। और

मैं उनकी सेवा करूँगा। मेरी प्रतिज्ञा अटल है। महाराणा कुछ न बोले। वे युद्ध करने को चले गये। चूड़ाजी ने धूम-धाम से ५ वर्ष के बालक मोकल को गद्दी पर बैठाया और आप उनके नाम से राज-काज देखने और सब प्रबन्ध-व्यवस्था करने लगे। उन्होंने राज्य की ऐसी व्यवस्था की कि सब तरह शान्ति और व्यवस्था हो गई और प्रजा सुखी और आनन्द से रहने लगी।

परन्तु मोकल के मामा राव जोधाजी के मन में राज्य का लोभ आ समाया। उन्होंने सोचा भाञ्जा तो अभी नादान है और उसकी माँ मेरी बहिन है वह भी वे समझ है यह अच्छा मौक़ा है, मैं जाकर ऐसी खटपट करूँगा कि चूड़ा को निकलवा कर बाहर करूँगा और राज्य को हथिया कर अपने क़ब्ज़े करूँगा। यह सोचकर बाप-बेटे दोनों ने मारवाड़ से चलकर मेवाड़ के राज-महल में डेरे आ जमाए। चूड़ाजी ने उनका खूब आदर सत्कार किया। परन्तु वे तो चूड़ाजी की जड़ काटने ही आए थे, वे मौक़ा ढूंढते रहे और जब मौक़ा पाते मोकल की माता से चूड़ाजी की बुराइयाँ करते थे। धीरे-धीरे दोनों बाप-बेटों ने मिलकर भोली-भाली रानी के दिल में यह बात बैठा दी कि चूड़ाजी तुम्हारे बेटे को मरवाकर स्वयं गद्दी हथियाना चाहता है। उसपर एक दिन रानी ने चूड़ाजी को बुलवा कर कहा—तुम मेरे पुत्र को मरवाने के लिये जो-जो चालें चल रहे हो मैं सब जानती हूँ। अब तुम्हारे ऊपर मुझे कुछ भी भरोसा नहीं रहा। तुम्हें राज्य के लोभ ने सताया है। सो अब तुम्हारा मेवाड़ में रहना नहीं होगा।

चूड़ाजी को बहुत दुख हुआ—उन्होंने हाथ जोड़ नम्रता से कहा—जैसी माता जी की आज्ञा। आप अपना राज्य सम्हालिए, आज से चित्तौर का भाग्य आपके आधीन है। मैं कहीं भी जाकर आध सेर आटा कमा लूंगा। इतना कह और प्रणाम कर वे महल से चल दिये।

मेवाड़ से चलकर वे सीधे मालवे के सुलतान के पास पहुँचे और एक नौकरी माँगी। सुलतान ने चूड़ाजी की बड़ी खातिर की और उन्हें अपनी सेना में ऊँचा पद दिया। खर्च के लिए जागीर लगा दी। वे धीरज से अपने दिन काटने लगे। पर रानी के दुर्व्यवहार का उनको बड़ा दुःख हुआ।

उधर चूड़ाजी के जाते ही जोधाजी और राव रणमल की आ बनी। रावजी मोकल को गोद में लेकर गद्दी पर बैठते थे। यह देखकर मेवाड़ के सरदारों की आँखों में खून उतर आता था। पर वे मन मसोस कर रह जाते थे! उधर जोधाजी मन्त्री बनकर राज के कर्ता-धर्ता ही हो गये थे। वे बड़-बड़े ओहदों पर से मेवाड़ वालों को दूर करके, मारवाड़ वालों को भरती कर रहे थे. थोड़े ही दिनों में जहां देखो वहीं सेना में और दरबार में जिम्मेदार पदों पर मारवाड़ ही के आदमी दिखाई देने लगे। राज-माता को तो कुछ खबर ही न थी, और वह खुश थी कि अब पुत्र का संकट टल गया. पर मोकल की धाय सब मतलब समझ गई थी। वह चुप-चाप राव रणमल और जोधाजी के कामों को बारीकी से देखा करती थी. जब उसे दोनों की सारी चालाकियों का पूरा-पूरा पता

चल गया, तब अवसर पाकर उसने एक दिन राज माता से कहा—महारानी जी, आपने चूड़ाजी को राज से निकाल कर अपने लिए काँटे बो दिये। जहाँ देखो, वहीं राज्य में मारवाड़-ही-मारवाड़ के आदमी भर रहे हैं। बेचारे चित्तौड़ वाले मारे-मारे फिर रहे हैं। अब राज्य जाने में देर नहीं है, बालक राजा की जान खतरे में है, अब भी संभलो; और राज्य की रक्षा करो।

यह सुनकर रानी ने पिता के पास जा सब बातों की हक़ीक़त पूछी; सुनकर राव रणमल ने कहा—राज-काज की बातों में औरतों को दखल देने का कोई काम नहीं है, तुम जाकर घर बैठो।

रानी ने भी तेज़ी से कहा—आप मेरे लड़के के नाम से मन-मानी कर रहे हो।

इस पर बूढ़े रणमल बोले—सो तो करेंगे। राज हमारा और हमारे बाप का है, रोटियाँ खानी हो तो चुपचाप महल में पड़ी रहो वरना मोकल से भी हाथ धोओगी। यह सुन रानी तो लोहू की घूँट पीकर चुप-चाप चली आई। उधर रणमल ने उस पर पहरा बैठा दिया। और चूड़ाजी के भाई रघुदेव को धोखे से मरवा डाला। अब महारानी की आँखें खुलीं और बाप तथा भाई की करतूत समझी।

उसने धाय से सलाह कर चूड़ाजी को खत लिखा, और सब हक़ीक़त बयान करके बहुत बहुत बिनती करके लिखा; अपनी माँ की ग़लती का ख्याल न कर आकर पिता के राज्य और भाई के प्राणों की रक्षा करो। तुम वीर हो, वीर से याचना करने से कोई विमुख नहीं होता।

पत्र को अत्यन्त गोपनीय रीति पर पुरोहित के द्वारा चूड़ाजी के पास, मालवे में भेज दिया गया। पत्र पढ़कर चूड़ाजी ने गुप्त सन्देश भेजा।

माता जी, हुआ सो हुआ। आप धीरज धारण करें तथा दान के बहाने आस-पास के गांवों में अपने विश्वास के आदमी भेजा कीजिये। परन्तु दिवाली के दिन मोकल को साथ लेकर गोमुण्डा अवश्य आना, वहाँ मैं मिलूँगा। इसके बाद सब काम ठीक कर लिया जायगा।

इसके बाद चूड़ाजी धीरे-धीरे अपने आदमी चित्तौड़ भेजने लगे। उनके भेजे हुए बहुत से भील छिपकर चित्तौड़ में रहने लगे। और कितने ही फ़ौज और पुलिस में भरती हो गये। उन्होंने बहुत से राजपूतों को लड़ने को तैयार कर लिया।

इधर रानी ने चूड़ाजी की बताई तरकीब काम में ली। और दिवाली के दिन मोकल को लेकर गोमुण्डा में चूड़ाजी से जा मिली। इसके बाद चूड़ाजी अपने आदमियों के साथ चित्तौड़ की ओर चले। फाटक पर पहरेदारों ने रोका तो उन्होंने कहा—हम महाराणा के आदमी हैं, उनके साथ बाहर गये थे; अब लौट रहे हैं। यह सुनकर पहरे वाले चुप रहे, सब लोग क़िले में घुस गये।

परन्तु रणमल जी को इन पर सन्देह हो गया और फ़ौरन ही लड़ाई छिड़ गई। चूड़ाजी के आदमी ढूँढ ढूँढ कर मारवाड़ के आदमियों को मारने लगे। चूडाजी खुद वीरता से लड़े और कई घाव खाये पर उन्होंने क़िले के भाटी सरदार को मार कर क़िले पर

अपना अधिकार कर लिया। जोधाजी रातों-रात चित्तौड़ से भाग खड़े हुए।

रणमल की एक प्रेमिका थी, वह उसके घर में अफ़ीम के नशे में पड़े थे। मौक़ा देख प्रेमिका ने उन्हीं की पगड़ी से उन्हें खाट से बांध दिया, लड़ाई का हो-हल्ला सुनकर उन्हें होश आया और वे पलङ्ग समेत उठ खड़े हुए। परन्तु एक राजपूत ने उनका वहीं काम तमाम कर दिया। इस प्रकार कुमार चूड़ाजी ने बालक राजा के प्राण और गद्दी की रक्षा की। आज भी उनकी सन्तान चूड़ावत कहाती है, और मेवाड़ के दरबार में उनका स्थान गद्दी के दाहनी ओर है।

वीर बालक हक़ीक़त राय

हक़ीक़त राय का जन्म पञ्जाब प्रान्त के स्यालकोट नामी नगर में हुआ था। यह वह समय था जब भारतवर्ष का शासन सूत्र मुग़लों के हाथ में था और शाहजहाँ राजगद्दी पर विराजमान थे। हक़ीक़त राय अपने माता-पिता का एक मात्र पुत्र था वह जाति का क्षत्रिय था। अभी यह छोटा ही था कि उसके पिता लाला बागमल ने उसे एक मसजिद में पढ़ने के लिये दाख़िल करादिया। उन दिनों संस्कृत की शिक्षा का कोई समुचित प्रबन्ध न होने के कारण हक़ीक़त राय को भी फ़ार्सी और उर्दू पढ़नी पड़ी। होनहार तो वह था ही, फ़ार्सी को भी वह बहुत जल्दी समझने लगा। यहाँ तक कि थोड़े ही दिनों में वह पुराने शिष्यों से भी बाज़ी ले गया। हक़ीक़तराय को इस प्रकार सबसे आगे बढ़ते देखकर उसके सहपाठी उससे दिल-ही-दिल में जलने लगे।

एक दिन मौलवी साहब बालकों को कुछ पाठ याद करने के लिये देकर किसी ज़रूरी काम के लिये बाहर चले गये। उन्हें गये अभी थोड़ी ही देर हुई थी कि बालकों ने शोर-गुल मचाना शुरू कर दिया। हक़ीक़त राय इस शोर-गुल से अलग एक कोने में चुप-चाप बैठकर अपना पाठ याद कर रहा था। एक लड़का जो कि मुसलमान था, इस डर के मारे कि कहीं हक़ीक़त पाठ याद करके सुना न दे उसके पास जाकर कहने लगा—क्यों रे, क्या सारे दिन

पढ़ता ही रहेगा ? बन्द कर किताब ! बड़ा पढ़ने वाला बना है।
हक़ीक़तराय किसी की बात में दख़ल नहीं देता था। और न यह
चाहता था कि उसे कोई सताए !

उसने धीरे से कहा—देखो जी, फ़िज़ूल मे दङ्गा मत करो नहीं
तो दुर्गा भवानी की सौगन्द अच्छा न होगा।

भला एक हिन्दू बालक के मुँह से एक मुसलमान यह शब्द कब
सुनने को तैयार था। उसने हक़ीक़त का हाथ पकड़ कर कहा—
तेरी दुर्गा भवानी की ऐसी-तैसी। बोल किताब रखता है कि नहीं।
बड़ा देवी वाला बना है। देखूँ तो तेरी देवी कहाँ है और मेरा क्या
बिगाड़ती है ? ऐसी देवियाँ रोज़ हमारी मस्जिद में झाड़ू देती है।

हक़ीकत राय को यह बहुत बुरा लगा। वह झट अपने हाथ
छुड़ाकर बोला—'यह आँखें किसी और को दिखाना। जो बात
तुम मेरी देवी माता की शान में कह सकते हो, वह मैं भी तुम्हारी
फ़ात्मा की शान में इस्तैमाल कर सकता हूँ।

मस्जिद में तहलका मच गया। लड़के पहले ही हक़ीक़त राय
से द्वेष रखते थे। जब उन्होंने रसूलज़ादी की तौहीन सुनी तो उन्हें
और भी गुस्सा चढ़ गया और वे जल-भुनकर ख़ाक हो गये !

एकाएक सब मिलकर हक़ीक़त पर टूट पड़े। हक़ीक़त यवन
बालकों के इस प्रकार के आकस्मिक आक्रमण से हैरान हो गया।
बेचारा अकेला क्या करता ? चुप-चाप बैठ रहा। उसे पूरा विश्वास
था कि मैं निर्दोष हूँ, परन्तु वहाँ न्याय करने वाला कौन था। सभी
एक रंग में रंगे हुए थे। हाँ मौलवी साहब से कुछ आशा थी,

परन्तु अभाग्यवश वे अभी तक नहीं आये थे। देखते-ही-देखते बात का बतंगड़ हो गया। मौलवी साहब वापिस आये तो लड़कों ने खूब नमक-मिर्च लगाकर सब बातें कह सुनाईं और यहभी अन्त में कहा, कि हम लोगों के कहने पर उल्टे हम ही लोगों को मारने पर उतारू हो गया। यह बात सुनकर मौलवी से न रहा गया।

यवन-काल में एक हिन्दू बालक की धृष्टता! उनके विचार में यह अपराध अक्षम्य था। मौलवी साहब ने तुरन्त हक़ीक़त को बुलाया। हक़ीक़त बेचारा मार खाकर एक स्थान पर खड़ा हो मौलवी के आने की प्रतीक्षा कर रहा था। जब उसने मौलवी साहब की कम्पित-वाणी सुनी तब उसे विश्वास हो गया कि लड़कों ने सब बातें मौलवी साहब से कह सुनाई हैं, इसी से मौलवी साहब क्रुद्ध हैं। वह समझता था कि लड़कों को पूरी-पूरी सजा मिलेगी। इन्हीं बातों को सोचता हुआ जा रहा था कि रास्ते में ही मौलवी साहब मिल गये। मौलवी साहब ने आव देखा न ताव। लगे तड़ातड़ चाँटे लगाने। हक़ीक़त की समझ में नहीं आता था, यह क्या बात है। जब मौलवी साहब अपना बुखार उतार चुके तब उन्होंने हक़ीक़त को एक कोठरी में बन्द कर दिया, और पुलिस में जाकर सारे मामले की इत्तला करदी। न्याय-अन्याय के आवरण में छिप गया। निर्दोष बालक की फ़रियाद परमेश्वर के अतिरिक्त सुनने वाला कौन था?

हक़ीक़त राय के पिता ने जब यह बातें सुनीं तो उनके होश उड़ गये। वह दौड़े-दौड़े मौलवी साहब के पास गये और अनुनय-विनय

करने लगे। परन्तु मौलवी साहब ने एक न सुनी। उन्होंने कहा कि इसका फ़ैसला अदालत से होगा और तब तक हक़ीक़त हवालात में ही रहेगा। हक़ीक़त के पिता स्वप्न में भी मौलवी साहब से ऐसी आशा न रखते थे। वे मौलवी साहब की ख़ातिरसे कभी बाज़ नहीं आये थे और समय-समय पर मौलवी साहब की मुट्ठी भी गरम करते रहते थे। परन्तु इस समय सब निष्फल गया। जब उसने देखा कि अब सब रास्ते बन्द हो गये हैं। तब उन्होंने मौलवी साहब के सामने दस अशर्फ़ियां रख दीं और पैरों पर सिर रख दिया। कोई दूसरा समय होता तो मौलवी इसके चतुर्थांश पर ही प्रसन्न हो जाते थे। परन्तु इनकी आँखोंमें मज़हबी नशा छाया हुआ था। वे टस-से मस न हुए। निराश हो लाला बागमल घर चले गये। दूसरे दिन मामले की पेशी हुई, सबके बयान लिये गये। आख़िर क़ाज़ी ने मौलवी साहब से जब उसकी सज़ा पूछी। तब मौलवी साहब ने कहा—शरअ में इसकी दो ही सज़ाऐं हैं "मुसलमान होना या प्राण-दण्ड।" मौलवी के मुँह से यह सुन सब हैरान रह गये ? इस छोटे से अपराध पर इतनी बड़ी सज़ा।

क़ाज़ी ने हक़ीक़त से कहा—लड़के ! तेरा रौशन चेहरा देखकर मुझे तरस आता है, मगर शरअ के ख़िलाफ़ मैं कुछ भी नहीं कर सकता ? हठ न कर, क्यों अपने घर का चिराग़ गुल करता है ? मुसलमान हो जा ? हक़ीक़त के हृदय में इस समय एक अद्भुत बल का सञ्चार हो रहा था ? उसने कड़क कर जवाब दिया—मैं प्राणों के रहते अपने धर्म को कभी नहीं छोड़ सकता ? अगर आप को

प्राण-दंड ही देना है तो खुशी से दे दीजिए। बालक की यह बात सुनकर लोग धन्य-धन्य कहने लगे। क़ाज़ी की आंखों में भी आँसू आ गये। उन्होंने मुक़दमा बड़ी अदालत में भेज दिया। बड़ी अदालत से गवर्नर सूबा के पास मुक़दमा चला गया। वहाँ से तीन-दिन की मोहलत मिली।

अदालत में बड़ी भीड़ थी। लोगों का ताँता लगा हुआ था। परन्तु लोग चुप-चाप लाहौर की बड़ी अदालत की ओर बढ़े चले जा रहे थे। सबके चेहरे पर विषाद की कालिमा छाई हुई थी। जनता वीर हक़ीक़त राय का अन्तिम फैसला सुनने के लिये बड़ी व्यग्र थी। जितने मुँह थे, उतनी ही बातें थीं। कोई कहता था आहा! कैसा सुंदर लड़का है! हँसता है तो मुँह से फूल झड़ते हैं, क्या हर्ज है अगर मुसलमान होकर ही यह रहे, ज़िन्दगी है तो सब कुछ है नहीं तो कुछ भी नहीं।

सब कर्मचारी अपने-अपने स्थान पर बैठ गये। वीर हक़ीक़त राय भी ज़ंजीरोंसे जकड़ा हुआ लाया गया। उसके चेहरे पर अपूर्व लावण्य था। वह वीरों की नाँई अचल खड़ा था। जिसने देखा उसी का मस्तक भक्ति से नत हो गया। सहसा हक़ीक़त के माता-पिता ने आकर कहा—बेटा अपने बूढ़े माता-पिता पर दया करो। मुसलमान धर्म ग्रहण करलो हम तुम्हारी सूरत देख कर जीते हैं। तुम्हारी ज़िन्दगी किसी-न किसी तरह रहे, हमारे लिये यही बहुत है। हक़ीक़त राय ने जवाब में कहा—यदि इस बात का मुझे कोई विश्वास दिलादे कि अपना धर्म छोड़ने से मैं सदा के लिये मृत्यु

से छुटकारा पा जाऊँगा तो मैं सहर्ष मुसलमानी धर्म ग्रहण कर लूँगा। जब एक बार मरना ही है तो जैसे आज मरा वैसे कल। फिर अपने प्यारे धर्म को क्यों छोड़ूँ, हरेक के भाग्य में ऐसी मृत्यु नहीं होती।

सब चुप होगये। भला मौत न होने का ठेका कौन ले सकता था, उसी समय नवाब साहब भी आ गये, और उन्होंने हक़ीक़त राय को बहुत समझाया कि वह मुसलमान हो जाए। पर हक़ीक़त ने उन्हें भी वही जवाब दिया।

मौलवी और क़ाज़ी शुभ काम में देर न किया चाहते थे। इस लिए उन्होंने नवाब साहब को जल्दी फैसला सुनाने को बाध्य किया, अन्त में नवाब ने मौत का फैसला सुना दिया, जो सबने कलेजा थाम कर सुना। सब के दिल बैठ गये और सिर झुक गये। रात भर वह अन्धेरी कोठरी में बन्द रहा, और उसके माता पिता दीवारों में टक्करें मारते रहे। प्रातःकाल जल्लाद ने उसका सिर काट लिया उसकी लाश, उसके माता पिता को जलाने को देदी। उसके माता-पिता सब घर-बार लुटाकर फ़क़ीर होगये और घूमते-फिरते दिल्ली आ पहुँचे। एक दिन बादशाह शाहजहाँ सोया हुआ था, कि हक़ीक़तराय की आत्मा ने स्वप्न में सब बातें बादशाह को कह दीं। दूसरे दिन बादशाह जब उठा तो बहुत उदास था और सोच रहा था कि मेरे राज्य में ऐसे अत्याचार होते हैं। यह सोच ही रहा था कि नीचे से किसी ने दुहाई दी।

यह हक़ीक़त राय के माता-पिता थे। बादशाह ने उन्हें ऊपर

बुलाया और सब बात पूछीं। उन्होंने सब बात कह सुनाई। जब बादशाह के स्वप्न की तसल्ली इस प्रकार हो गई तो उसे यक़ीन आ गया। उसने एकाएक लाहौर जाने की तैयारी कराई। जब लाहौर पहुँचे तो नवाबने जो गवर्नर सूबा था, उसे सब बात सुनाई। बादशाह ने इनाम के बहाने सब क़ाज़ियों, मौलवियों और उनके सब कुटुम्बियों को इनाम देने के लिए स्यालकोट से लाहौर बुलाया। रावी नदी के दूसरी ओर खेमे लग गये, नदी चढ़ाव पर थी। जब सब क़ाज़ी वग़ैरा आ गये तो बादशाह ने मल्लाहों को कह दिया कि इन्हें नदी में डुबो देना। उन्होंने नदी पार करते वक्त सब को डुबो दिया। बादशाह ने नवाब को भी मरवा दिया। दूसरे दिन एक आम दरबार हुआ, उसमें बादशाह ने हक़ीक़तराय के माता-पिता को बहुत धन दिया। और एक और पुत्र के लिए परमात्मा से सबने प्रार्थना की। प्रार्थना स्वीकार हुई। बादशाह ने हक़ीक़त राय को दो समाधियाँ एक लाहौर में और दूसरी स्यालकोट में अपने व्यय से बनवाईं। और हक़ीक़त के माता-पिता को बहुत तसल्ली वग़ैरा दी और बहुत-धन देकर घर वापिस भेज दिया।

कहते हैं कि लाला बागमल के घर एक और बालक हुआ। जिसकी सन्तान आजकल नज़र आ रही है।

अभिमन्यु

पाण्डवों के शिविर में बड़ी चिन्ता फैली हुई है। अर्जुन और कृष्ण कौरवों की सेना के व्यूह में घुसकर दूर तक चले गये थे, उनका लौटना सम्भव न था, यह देख द्रोणाचार्य ने चक्रव्यूह की रचना की थी, जिसमें प्रविष्ट होना और निकलना कोई नहीं जानता था, यही सब वीरों की चिन्ता का विषय था। सब अपनी-अपनी कह रहे थे।

भीम ने खम ठोंक कर कहा—"कोई चिन्ता नहीं, मैं अपने बाहुबल से इस व्यूह को छिन्न-भिन्न कर दूँगा।

युधिष्ठिर ने कहा—नहीं भाई, यह संभव नहीं है, जब तक तुम व्यूह भेदन करने की विद्या नहीं जानते तब तक मै तुम्हें यह साहस न करने दूँगा।

"परन्तु क्या हम शत्रु के भय से घर में बैठ रहेंगे ?

यह ठीक है पर हम व्यूह में फँस कर मरना भी नहीं चाहते। हाय, अर्जुन के न होने से हम इस दुर्दशा में फँस गये। आचार्य को भी संधि मिल गई। यह हमारे सर्वनाश का उपाय है। देखते नहीं, कौरव कैसा कोलाहल कर रहे हैं।

अभिमन्यु—आप मुझे व्यूह में जाने दीजिये, पर मैं भीतर जाने की विधि जानता हूँ—बाहर निकलने की नहीं।

युधिष्ठिर—नहीं पुत्र, तुम अकेले ७ महारथियों से युद्ध न कर सकोगे।

अभिमन्यु—महाराज, मैं आपको दिखा दूँगा कि मैं आपका सच्चा पुत्र हूँ। आप मेरी कम अवस्था पर विचार न करें।

युधिष्ठिर—नहीं पुत्र,हम तुम्हें जलती आगमें कैसे झोंक सकते हैं, कुछ स्याह-सफेद हो गया तो अर्जुन को क्या जवाब देंगे!

अभिमन्यु—आप चिन्ता न करें, मैं व्यूह में घुसना जानता हूँ। पीछे उसे छिन्न-भिन्न करके निकल आऊँगा।

युधिष्ठिर—क्या तुम चक्रव्यूह में घुसना जानते हो?

अभिमन्यु—हाँ महाराज, मैंने माता के गर्भ ही में यह विद्या सीख ली थी, एक बार जब मैं गर्भ में था पिता जी माताजी को व्यूह रचना को भेद बताने लगे।पर बाहर निकलने का भेद माता न जान सकीं, वे सो गईं। अतः मैं भी उसे न जान सका।

युधिष्ठिर—खैर, यदि तुम व्यूह में चले भी गये, तो लौटना कठिन है। नहीं, मैं तुम्हें जोखिम के काम में नहीं जाने दूँगा, कभी नहीं।

अभिमन्यु—महाराज, मैं क्षत्रिय पुत्र हूँ, आप मुझे आशीर्वाद दीजिये, मैं आज शत्रु के दाँत खट्टे करूँगा।

युधिष्ठिर—पर मुझे तुम्हारे लौटने में सन्देह है।

भीम—आप इसकी चिन्ता न करें। अभिमन्यु के पीछे-पीछे हम भी व्यूह में घुस जावेंगे और वहाँ से अपनी भुजाओं के बल पर निकल आवेंगे।

युधिष्ठर—देखता हूँ दूसरा उपाय नहीं है, अच्छा ऐसा ही हो, पर भीम, सावधान रहना।

भीम—(खम ठोक कर) आप निश्चिन्त रहें।

(सब युद्ध का साज सजते हैं। अभिमन्यु उत्तरा से विदा हो युद्ध को जाता है।)

२

"अभी तक अभिमन्यु नहीं लौटा, सन्ध्या हो रही है।"

"कौरव सेना में बड़ा कोलाहल हो रहा है गरुड़ध्वज नहीं दीख रहा।"

"वह गर्द का पर्वत उड़ता नजर आ रहा है, वह भीम की पताका है, भीम आ रहा है।"

"पर गरुड़ध्वज कहाँ है? अभिमन्यु कहाँ है?"

"ठहरिए, भीम शिविर में आ पहुँचे।"

(घायल भीम आते हैं।)

युधिष्ठर—भाई भीम, पुत्र अभिमन्यु कहाँ है?

भीम—कुछ कह नहीं सकता, हम लोग उसका अनुगमन नहीं कर सके।

युधिष्ठिर—तब क्या वह अकेला व्यूह में घुस गया?

भीम—जी हाँ, हम अनुगमन न कर सके, आचार्य की तीव्र दृष्टि में हम बिंध गये।

युधिष्ठर—सुनो-सुनो कौरव सेना हर्षनाद कर रही है। क्या हुआ?

भीम—कह नहीं सकते।

युधिष्ठिर—वह कौन आ रहा।

(एक घायल योद्धा आकर गिर पड़ता है।)

भीम—कौन हो तुम ?

योद्धा—अभय-महाराज। अभय—

युधिष्ठिर—पुत्र अभिमन्यु कुशल से हैं, कहो।

योद्धा—महाराज .

भीम—कहो-कहो, पुत्र अभिन्यु—

योद्धा—दुहाई महाराज की, उन्हें आठ महारथियों ने मिल कर निःशस्त्र हनन कर दिया।

युधिष्ठिर—(उठकर) निःशस्त्र हनन कर दिया ? किसने यह कुकर्म किया ?

योद्धा—आठ महारथियों ने महाराज, जयद्रथ पापी ने निशस्त्र वीर की गर्दन पर वार किया।

भीम—अभागा जयद्रथ।

(पाण्डव सेना में हर्षनाद होता है।)

युधिष्ठिर—अरे ! यह शोक समाचार के अवसर पर हर्षनाद कैसा ? इसे बन्द करो।

भीम—महाराज अर्जुन युद्धजीत कर आ रहे हैं। वह पंच-जन्य शंख का घोष सुनिए।

युधिष्ठिर—हाय कैसे मैं अर्जुन को मुँह दिखाऊँगा।

(अर्जुन आते हैं।)

अर्जुन--महाराज, आपके पुण्य-प्रताप से शत्रु पर हमारी विजय हुई, पर यह शिविर में कैसा सन्नाटा है, बाजे नहीं बज रहे, सैनिक चुप बैठे हैं, हर्षनाद नहीं हो रहा।

युधिष्ठिर—आओ भाई, शान्त हो—अपराधी मैं हूँ!

अर्जुन—हुआ क्या है महाराज? अभिमयु कहाँ है।

युधिष्ठिर—अभी सब मालूम हो जायगा। तुम ज़रा शान्त हो।

अर्जुन—आपकी वाणी काँप रही है। आपकी आँखों से आँसुओं की धार बह रही है। महाराज, कहिये मेरा अभिमन्यु कुशल से तो है? भाई आपकी भुजायें ढीली क्यों हैं, कहिये, अभिमन्यु कहाँ है?

युधिष्ठिर--अरे भाई, वीर पुत्र वीर गति को प्राप्त हुआ।

अर्जुन—क्या कहा? अभिमन्यु वीर गति को प्राप्त हुआ, अभी उसकी आयु क्या थी, उसे युद्ध में भेजा किसने?

युधिष्ठिर—मुझ पापी ने—अब तुम मेरा वध करो।

अर्जुन—महाराज।

(मूर्छित हो जाते हैं।)

युधिष्ठिर—अरे भाई, अर्जुन का यत्न करो।

भीम—शोक से उनकी छाती फट जायेगी।

अर्जुन—(होश में आकर) हाय मेरा पुत्र इस कराल युद्ध की भेट हो गया। अब मैं उसका मुखड़ा न देख सकूँगा, उसकी मुस्कराहट, उसका विनोद! मैं उत्तरा को कैसे मुँह दिखाऊँगा।

(श्रीकृष्ण आते हैं।)

श्रीकृष्ण—अर्जुन शान्त हो ।

अर्जुन—महाराज, शान्ति कैसी ।

श्रीकृष्ण—अभिमन्यु अमर हुआ, उसने कौरवों की सेना को छिन्न-भिन्न कर दिया । उसे जयद्रथ ने छल से मारा है । इस शत्रु से बदला लो ।

अर्जुन—मैं अर्जुन प्रतिज्ञा करता हूँ, कि यदि जयद्रथ को कल सूर्यास्त से पहिले ही न मार डालूँ तो गांडीव सहित जलकर चिता पर भस्म हो जाऊँगा ।

श्रीकृष्ण—अर्जुन, यह कैसी प्रतिज्ञा ।

अर्जुन—प्रतिज्ञा हो चुकी महाराज, प्रतिज्ञा पालन न करूँ तो मैं अर्जुन नहीं ।

श्रीकृष्ण—तुम अर्जुन हो, अर्जुन ही रहोगे । उठो-अब पुत्र की ऊर्ध्व क्रिया करें ।

सब—हाय पुत्र, हाय अभिमन्यु । (जाते हैं ।)

उपमन्यु

बहुत पुराने जमाने की बात है, उन दिनों न आज कैसे शहर थे न बड़ी आलीशान यूनिवर्सिटियाँ। विद्वान् ऋषिगण बनों में रहते और छात्र गण उन्हीं के आश्रम में रह कर विद्योपार्जन करते थे। वे न फ़ीस लेते थे, न उस जमाने के विद्यार्थी—टाई, कालर, कोट, पैन्ट, चश्मे से लैस रहना सीखे थे, इसी से उनके शिष्य विद्यामृत पानकर अमर हो जाते थे।

ऋषि धौम्य बड़े भारी महात्मा थे। उनके एक शिष्य का नाम उपमन्यु था। एक दिन ऋषि ने शिष्य से कहा—बेटा उपमन्यु, मैं तुम्हें अपनी गाय चराने का काम सौंपता हूँ तुम यत्न से उनकी देख-भाल रखना।

उपमन्यु ने गुरू जी की आज्ञा शिरोधार्य की और वह गायोंको चराने लगा। सारे दिन गायों को चरा कर वह शाम को आश्रम में आता, और गुरू जी को प्रणाम कर उनके सामने खड़ा हो जाता। इस तरह करते-करते कई वर्ष बीत गये।

एक दिन ऋषि ने पूछा—क्यों बेटा उपमन्यु,तुम तो खूब मोटे हो रहे हो, कहो, क्या खाते-पीते हो ?

उपमन्यु ने कहा—महाराज मैं गांवों से भिक्षा माँग लाता हूँ।

गुरू जी ने कहा—"यह क्या करते हो। भिक्षा माँग कर जो

लाते हो, उसे बिना हमें दिखाये ही खा जाते हो ? यह ठीक नहीं है, जो भिक्षा लाओ, हमारे सामने उपस्थित करो।

उपमन्यु ने कहा—बहुत अच्छा गुरुजी।

इसके बाद वह भिक्षा लाकर गुरुजी के सामने रख देता और वे उसमें से कुछ भी नहीं देते थे।

उपमन्यु अब भी खुश रहने लगा। कुछ दिन बाद उसे खूब मोटा-ताज़ा देखकर गुरुजी ने पूछा—अरे पुत्र उपमन्यु, अब तुम क्या खाते हो ? जो भिक्षा माँग कर तुम लाते हो वह तो मैं रख लेता हूँ।

उपमन्यु ने कहा—महाराज, मैं फिर भिक्षा माँग लाता हूँ। उसी से मेरा काम चल जाता है।

गुरुजी ने कहा—वाह, यह तो महाअधर्म है। इससे दूसरोंकी भिक्षा में कमी पड़ेगी। तुम्हें ऐसा काम हर्गिज़ नहीं करना चाहिए।

उपमन्यु ने स्वीकार किया और चल गया। थोड़े दिन बाद इसे खूब मोटा-ताज़ा देखकर ऋषि ने कहा—पुत्र, तू अपनी भिक्षा तो सब मुझे दे देता है और दुबारा भी माँगने नहीं जाता—फिर तू अब क्या खाता है जो ऐसा मोटा ताज़ा बना हुआ है।

उपमन्यु ने कहा—महाराज, आजकल मैं गायों का दूध पी लेता हूँ।

महर्षि ने कहा—राम-राम, तुम यह क्या करते हो ? बिना मेरी आज्ञा के मेरी गायों का दूध कैसे पी लेते हो ?

उपमन्यु ने कहा—महाराज अब मैं गायों का दूध न पीऊँगा।

उपमन्यु अब दिन भर गायें चराता और शाम को गुरुजी के सामने आ खड़ा होता। जब इस तरह बहुत दिन हो गए तो गुरुजी ने फिर उससे पूछा—अरे पुत्र तू न तो भिक्षा अपने लिये लाता है और न गाय का दूध ही पीता है, अब तू क्या खाता है, जो वैसा ही मोटा बना हुआ है।

उपमन्यु ने कहा—बछड़ों के मुँह से जो झाग गिरता है, मैं वही खा लेता हूँ।

ऋषि ने कहा—हरे-हरे बेटा ऐसा फिर कभी न करना, बछड़े जब तुम्हें फेन खाता देखेंगे तो ज्यादा फेन गिरायेंगे इससे वे भूखे रहेंगे।

उपमन्यु ने हाथ जोड़ कर कहा—अच्छा महाराज, अब मैं फेन भी न खाऊँगा।

और कुछ दिन वह गायें चराता रहा। एक दिन शाम को वह यथा-नियम गुरुजी के सामने नहीं आया गुरुजी ने शिष्यों से पूछा—अरे आज उपमन्यु कहाँ है? उसका सब खाना-पीना बन्द कर दिया है कहीं हम से नाराज़ होकर तो इधर-उधर नहीं चल दिया? चलकर देखें तो कि वह कहाँ है। यह कहकर गुरुजी अपने सब शिष्यों को लेकर बन में उपमन्यु को ढूंढने निकले। बनमें जाकर महर्षि ने उपमन्यु का नाम ले लेकर पुकारना शुरू किया। बात यह हुई थी कि उपमन्यु ने और कुछ उपाय न देख आक के पत्ते खा-खा कर पेट की ज्वाला बुझाई थी इस से वह अन्धा हो गया था और कुए में गिर गया था।

गुरुजी की आवाज़ सुनकर उपमन्यु ने कुए के भीतर चिल्ला कर कहा—भगवन्, मैं कुए में गिर गया हूँ।

"अरे पुत्र, तुम कुए में कैसे गिर गये ?

"आक के पत्ते खाने से मैं अंधा होगया हूँ इसलिए मैं कुए में गिर गया।

गुरुजी ने कहा—अच्छा, तू अश्वनी कुमारों की स्तुति कर तेरी आँखें अच्छी हो जायेंगी। उपमन्यु ने ऐसा ही किया।

अश्वनी कुमारों ने प्रसन्न होकर कहा—हम तेरी स्तुति से बहुत प्रसन्न हैं। ले यह हविष्य खा।

उपमन्यु ने उन्हें प्रणाम करके कहा—मैं आपकी बात तो नहीं टाल सकता, पर पहले गुरु जी को अर्पण किये बिना मैं कुछ नहीं खा सकता। इस पर अश्वनी कुमारों ने कहा—तेरी गुरु-भक्ति धन्य है, तेरी आँखें अच्छी हो जायँगी और तेरा कल्याण भी हो जायगा।

बस उपमन्यु की आँखें अच्छी हो गईं। और उसने बड़ी भक्ति से अश्वनी कुमारों को धन्यवाद दिया। उसके बाद गुरुजी ने बड़े प्रेम और यत्न से उसे सब विद्याओं में पारंगत कर दिया।

पितृ भक्त श्रवण

बूढ़े-बुढ़िया दोनों अंधे थे। घर में बहू थी चतुर और चालाक। और पुत्र था पिता-माता का परम भक्त । पुत्र ने अपनी बहू को आज्ञा दे रखी थी कि पिता-माता की भली भाँति सेवा करे, परन्तु वह अपने लिये और पति के लिये उत्तम भोजन बनाती और अन्धे सास,ससुर को खराब खाना खिलाती थी, पितृ-भक्त श्रवण माता पिता को साथ बैठाकर भोजन करता था पर उसकी स्त्री ने यह चालाकी की कि हाँडी के बीच में पर्दा लगा रखा था, आधी में खीर बनाती और आधी में छाछ की महेरी बनाती, श्रवण को कुछ पता न चलता कि एक ही प्रकार हाँडी में दो प्रकार का भोजन बन रहा है। एक दिन श्रवण ने अपनी थाली माता-पिता के आगे धर दी। अन्धे बूढ़े ने जो खीर खाई तो प्रसन्नता से चीख उठा--बोला वाह पुत्र आज बहुत दिन बाद खीर खाई ।

श्रवण ने कहा—यह क्यों पिता जी! खीर तो आप रोज ही खाते हैं। इस पर बूढ़े ने कहा—अरे पुत्र, छाछ की महेरी को खीर कहते हैं ! इस पर श्रवण को बड़ा आश्चर्य हुआ पर जब उसने दो पेट की हाँडी देखी तो सब भेद समझ गया। जब उसे पता लगा कि उसके माता-पिता के साथ उसकी स्त्री ने अन्याय किया है तो उसे बहुत दुख हुआ।

तब से उसने माता-पिता की सेवा का भार अपने ऊपर ले

लिया वह उनकी सारी सेवा-टहल स्वयं करता। अपने आप पानी भर कर उन्हें निहलाता, कपड़े पहनाता, धोता और भोजन बना कर खिलाता था।

एक बार उसके माता-पिता ने तीर्थ-यात्रा की इच्छा की। उन दिनों तीर्थ-यात्रा इतनी सुलभ न थी जितनी अब है! न रेल थी, और न पक्की सड़कें, सैकड़ों कोस तक बन-ही-बन थे। श्रवण एक बहंगी बना, माता-पिता को उसमें बैठाकर तीर्थ-यात्रा को ले चला। वह दिनभर उन्हें लेकर चलता और रात को सेवा करता। इस प्रकार कई वर्ष घूम फिर कर बहुत से तीर्थों की उसने यात्रा की।

एक दिन श्रवण और उसके माता पिता एक बन में ठहरे थे। उन्हें प्यास लगी, उन्होंने श्रवण को नदी से जल लाने को कहा। श्रवण घड़ा लेकर नदी में जल भरने चला। नदी कुछ दूर थी, दैव-योग से अयोध्या के राजा दशरथ उस समय शिकार खेलते उधर से आ निकले। वे शब्द वेधी बाण चलाने में बड़े चतुर थे। श्रवण ने जब घड़े में जल भरा तो उसमें से शब्द हुआ---राजा ने समझा नदी तीर पर कोई जंगली जीव पानी पी रहा है। उन्होंने ताक कर तीर मारा। निशाना अचूक था, वह श्रवण की छाती के पार हो गया। श्रवण वहीं गिर कर कराहने लगा।

राजा ने जाकर देखा, सुन्दर युवक वेदना से कराह रहा है। और उसकी छाती से खून की धार बह रही है, राजा को बहुत पछ-तावा हुआ, उसने उसकी छाती से तीर निकाला और उसका परिचय पूछा।

श्रवण ने कहा—वहाँ वृक्ष के नीचे मेरे माता-पिता हैं वे अन्धे हैं और प्यासे हैं, तुम उन्हें जल दे आओ इतना कहते-कहते श्रवण ने प्राण त्याग दिये।

राजा पानी का घड़ा लेकर अन्धे बूढ़े-बुढ़िया के पास गया। पानी रखकर चुप-चाप खड़ा हो गया। बूढ़े ने पुत्र को पुकारा, पर न बोलने पर उन्हें आश्चर्य हुआ।

अन्त में राजा ने अपना परिचय दिया और सारी कथा कह सुनाई। पुत्र का मरना सुनकर दोनों अन्धे फूटे-फूट कर रोने लगे। अत्यन्त दुखी होकर उन्होंने राजा को पुत्र की चिता बनाने की आज्ञा दी। राजा ने अत्यन्त दुखी होकर चिता बनाई और दोनों बूढ़े-बुढ़िया पुत्र की लाश गोद में लेकर जल मरे। मरते वक्त उन्होंने दशरथ को श्राप दिया कि जैसे हम पुत्र-वियोग में मरते हैं, उसी तरह तुम भी मरोगे।

समय बीतता चला गया। दशरथ बूढ़े के श्राप को भूला नहीं। अन्त में पुत्र के वियोग में ही उनके भी प्राण गये।

: ६ :

प्रल्हाद

प्रल्हाद का नाम हिन्दुओं में घर-घर विख्यात है। उनका जन्म एक प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित वंश में हुआ था। महर्षि कश्यप के सत्रह स्त्रियाँ थीं सबसे बड़ी का नाम 'दिति' था। दिति के गर्भ से उनको दो महा पराक्रमी पुत्र हुए। उनका नाम हिरण्य कश्यप और हिरण्याक्ष रखा गया। दिति के पुत्र होने के कारण उनका नाम दैत्य पड़ गया। पीछे अपने अमानुषिक कर्मों के कारण दैत्य नाम बुरे अर्थों में माना जाने लगा। इन्हीं के वंशज दैत्य कहलाये। प्रल्हाद हिरण्य कश्यप के पुत्र थे। इनकी माता का नाम कयाधु था, प्रल्हाद पाँच भाई थे जिनमें प्रल्हाद तीसरे थे। इनकी एक बहिन भी थी जिसका नाम सिंहिका था।

हिरण्य कश्यप बड़ा था और हिरण्याक्ष छोटा। हिरण्य कश्यप राज्य को देखता था हिरण्याक्ष योंही घूमता फिरता, लोगों को सताता था। उससे सब लोग भयभीत रहते थे। हिरण्याक्ष बड़ा वीर, साहसी और विजयी था—उसने बड़े-बड़े देश अपने बाहुबल से जीतकर अपना शासन जमा लिया। अन्त में वराह अवतार हुआ। और हिरण्याक्ष मार डाला गया। जिससे सब लोगों को बहुत प्रसन्नता हुई। परन्तु इससे हिरण्य कश्यप को बहुत क्रोध आया और उसने सत्पुरुषों को सताना आरम्भ कर दिया। भाई के मरने का उसे अत्यन्त दुःख हुआ। वह रात-दिन बेचैन रहने

लगा, एक बार उसकी रानी ने शयनागार में जाकर देखा कि राजा बेचैन हो करवटें बदल रहा है, तो उसने कहा--महाराज जब सारा संसार आनन्द मग्न हो सो रहा है आप जैसे महाप्रतापी को ऐसी क्या दुखदाई चिन्ता है जिससे आप ऐसे बेचैन हो रहे हैं।

हिरण्य-कश्यप ने कहा--जब पापी देवताओं ने मेरे भाई हिरण्याक्ष को मारा है, तबसे देवताओं की ताक़त बढ़ गई है और हमारे दैत्य कुलकी बड़ी अप्रतिष्ठा हुई है। देवताओं की शक्ति बढ़ती ही जातती है। मैं चाहता हूँ कि सारे देवताओं को नष्ट करदूँ। रानी ने कहा--इस में इतनी चिन्ता करने की क्या बात है? बेचारे देवताओं की क्या हैसियत है जो आपके तेज और प्रताप के सामने खड़े रह सकें। आप मन के दुःख को त्याग कर वीर की भाँति युद्ध की तैयारियाँ कीजिये।

हिरण्य कश्यप ने कहा--तुम्हारा कहना ठीक है, परन्तु मुझे विष्णु का बड़ा डर है, उसी ने छल करके मेरे भाई को मारा है, और देवताओं को उसका बड़ा भारी सहारा है, उस से मुक़ाबला करने की मेरी शक्ति नहीं है। इस लिये मैंने एक बात सोची है। वह यह कि मैं तप करके शिवजी से वरदान प्राप्त करूँ। तब निर्भय होकर इन देवताओं से युद्ध करूँ। इसी में दैत्य कुल का लाभ है।

रानी ने कहा-आप सब नीति के ज्ञाता और बुद्धिमान हैं। आप को मैं क्या सम्मति दे सकती हूँ। आप जो ठीक समझें करिये। जब देवताओं ने विष्णु का सहारा लिया है तब आपको भी शिवजी का सहारा लेना चाहिये।

इस तरह रानी से सलाह करके हिरण्य कश्यप आराम की नींद सोया। दूसरे दिन मंत्री और पुत्र को राज-पाट सौंप कर कैलाश पर्वत पर तपस्या करने को चला गया। जिस समय वह तपस्या करने जा रहा था उस समय रानी गर्भवती थी। उसने अपने गुरू शुक्राचार्य को बुलाकर कहा—कि आप गर्भस्थ शिशु के सब संस्कार यथा विधि कराइये। मैं कैलाश पर्वत पर तपस्या करने जा रहा हूँ।

जब देवताओं को इस बातका पता लगा तो वह बड़े घबराये। देवराज इन्द्र ने हिरण्य कश्यप की राजधानी हिरण्यपुर पर धावा बोल दिया। सारे शहर को लूट-पीट कर उजाड़ दिया। सेना-पतियों और राजकुमारों को कैद कर लिया। बहुत से दैत्य मारे गये। और बहुत से जङ्गलों में छिप गये। दैत्यों की बहुत सी सम्पति देवता लूट कर ले गये।

हिरण्य कश्यप की रानी को भी पकड़ कर ले गये थे। पर नारद ने कहकर उसे छुड़ा लिया और वह कह-सुनकर उसे अपने आश्रम में ले आये। वहां पर नारद जी के उपदेशों से उसकी भगवान् में भक्ति हो गई, उसका प्रभाव उसके गर्भ के बच्चे पर भी पड़ा।

उधर हिरण्य कश्यप ने बन में घोर तपस्या की, उससे प्रसन्न होकर शिवजी ने दर्शन दिये और कहा—कि वर मांग। हिरण्य कश्यप ने कहा—कि महाराज, मुझे यह वर दीजिये कि मुझे कोई आदमी न मार सके। मेरी मृत्यु न घर में हो, न बाहर हो, न

धरती में हो, न आसमान में हो, न दिन में न रात में, शिवजी ने हँस कर कहा,—अच्छा ऐसा ही होगा। दैत्य राजा जब वर प्राप्त कर अपनी राजधानी को लौटा तो उसने देखा राजधानी उजाड़ और सूनी पड़ी है और राजमहल में भी सन्नाटा है। जब उसने इन्द्र के अत्याचारों की कहानी सुनी तो वह क्रोध से थर-थर काँपने लगा। देवताओं ने जब वर प्राप्ति की बात सुनी तो बड़े घबराये और सब विष्णु भगवान् के पास गये। और कहा—कि महाराज अब क्या करना होगा।

विष्णु भगवान ने उनको तसल्ली दी और कहा--तुम डरो मत, मैं तुम्हारी रक्षा करूंगा। इन्द्र ने दैत्यों और राजकुमारों को डर के मारे छोड़ दिया। नारद जी भी उनकी गर्भवती रानी को हिरण्य कश्यप के पास छोड़ आए। पुत्र, मन्त्रियों और रानी को पाकर उसने फिर से हिरण्यपुर बसाया। थोड़े दिनमें फिर हिरण्य-पुर पहले की तरह वैभव और समृद्धि का केन्द्र हो गया।

थोड़े दिन बाद रानी के गर्भ से प्रह्लाद का जन्म हुआ। बालक के पैदा होते ही बाजे बजने लगे और बधाइयाँ गाई जाने लगीं। ग़रीबों और अपाहजों को अन्न और वस्त्र बाँटा जाने लगा। राज-धानी भर में उत्सव हो उठा। दैत्यराज भी परम प्रसन्न हुआ। बालक धीरे-धीरे बड़ा हुआ। दैत्यगुरु शुक्राचार्य ने उसके संस्कार कराए। और उसका नाम प्रह्लाद रखा--क्योंकि उसे देखकर सभी प्रसन्न होते थे।

प्रह्लाद अत्यन्त रूपवान, बुद्धिमान और धर्मात्मा बालक था।

वह चुप-चाप एकान्त में बैठा कुछ सोचा करता था। धीरे-धीरे उसे विद्याभ्यास कराया गया। वह अति मेधावी था और जो पाठ गुरू जी पढ़ाते थे। झट सीख लेता था।

एक दिन वह पाठशाला से बालकों के साथ आ रहा था। रास्ते में देखा कि एक कुम्हारी अपने घर से बाहर बैठी रो रही है और भगवान को पुकार रही है। उसके घरके आँगन में आवा जल रहा है। बालक प्रल्हाद ने करुणा करके पूछा—कुम्हारी तू क्यों रो रही है।

कुम्हारी ने कहा बेटा मेरा मन बड़ा दुखी है तुम से क्या कहूँ मेरे घर में बिल्ली ने दो बच्चे दिये थे। सर्दी से उन्हें बचाने के ख्याल से मैंने उन्हें एक घड़े में रख दिया था—मैं तो बाहर गई थी—मेरे कुम्हार ने वह घड़ा भी पकाने को आग में रख दिया—अब बेचारे बच्चों को भगवान ही बचा सकता है इतना कह कर वह फिर रोने और भगवान को पुकारने लगी।

प्रल्हाद ने कहा—भगवान कैसे अब बच्चों को बचा सकते हैं? बच्चे तो आग में जल भुन गये होंगे।

कुम्हारी ने कहा—पुत्र भगवान आग में भी रहते हैं पर नहीं जलते, आग भी उन्हीं की बनाई है। वे चाहें तो बच्चे बच सकते हैं। उनकी शक्ति अपार है इसी से मै उन्हें पुकार रही हूँ। अगर बच्चे मर गये तो मुझे ही पाप लगेगा।

प्रल्हाद ने कहा—अच्छा कल मैं आकर देखूँगा कि तेरे भगवान ने बच्चों को बचाया या नहीं।

२

दूसरे दिन कुम्हारी के घर प्रह्लाद ने जाकर देखा तो छोटे-छोटे बच्चे कुम्हारी की गोद में बैठ पूँछ हिला हिला कर दूध पी रहे हैं। प्रह्लाद ने कहा—यही वे बच्चे हैं?

"हाँ"

"कैसे बचे?"

"भगवान् ने बचाये।"

"आग में जले नहीं?"

"जिधर बच्चे थे, उस ओर के सारे घड़े कच्चे रह गये, वहाँ तक आँच पहुँची ही नहीं।"

प्रह्लाद सोच में पड़ गये। उन्होंने फिर कुम्हारी से कहा तूने कभी देखा है भगवान् को?

"नहीं बेटा, भगवान कहीं दीखते थोड़े ही हैं, वे तो घट-घट में बसते हैं, उनका ध्यान करने से ही वे मनकी इच्छा पूर्ण करते हैं।

प्रह्लाद ने उत्सुकता से कहा "तूने किया था उनका ध्यान।"

"मैंने कई बार रो-रो कर उनसे प्रार्थना की थी।"

"प्रार्थना उन्होंने सुनी?"

"सुनकर ही तो बच्चों को बचाया, देखो कैसे प्यारे बच्चे हैं।"

प्रह्लाद बच्चों से खेलने लगा, और भगवान्का ध्यान करने लगा?

घर लौट कर वह एकान्त में बैठ कर सोच रहा था—यह भगवान् कौन है? कहाँ रहते हैं? इन से मिलना चाहिये।

उसकी माता ने कहा—अरे पुत्र ! तुम यहाँ अकेले बैठे क्या सोच रहे हो ?

मैं भगवान् की बात सोच रहा हूँ माँ

नहीं बेटे, ऐसा कभी मत कहना, भगवान् तेरे पिता के शत्रु हैं जो कोई भमवान का नाम लेता है, वे उसी का सिर काट लेते है ?

पिता जी ऐसा क्यों करते हैं माँ ? भगवान् तो बड़े दयालु हैं, उन्होंने कुम्हारी के बिल्ली के बच्चों की जान बचाली।

पागल कहीं का। भगवान् देवताओं के साथी हैं, उन्हीं की मदद से तो देवताओं ने हमें इतने दुःख दिये हैं, तुम्हारे पिता के राज्य में उन्हीं की दोहाई बोली जाती है, उन्हीं के नाम का डंका बजता है।

तो क्या पिता जी ही इस दुनिया के कर्ता-धर्ता हैं ?

वे पृथ्वी के राजा हैं ?

वे जलते कुम्हार के अवा में से बिल्ली के बच्चों को जिन्दा बचा सकते हैं ?

अरे,उनके प्रभाव के सामने बड़े बड़े देवता थर-थर काँपते हैं ?

प्रल्हाद चुप हो गया, फिर उसने कहा—माँ, मैं तो भगवान् को प्यार करता हूँ, वे बड़े दयालु हैं, माँ तुम भी तो उनका ध्यान किया करो, वे किसी को दीखते नहीं हैं, परन्तु मनमें उनका ध्यान करने से वे झट मनोकामना पूरी कर देते हैं।

बालक प्रल्हाद की इन बातों से रानी ने मन में कहा—ऐसी ही बातें नारद जी कहा करते थे; इसके पिता सुनेंगे तो आफ़त

मचा देंगे। प्रकट में कहा—अच्छा चल अब कुछ खा पी और आराम कर। माँ की प्रेम-भरी वाणी सुनकर प्रल्हाद ने माता के गले में हाथ डाल दिये।

३

अब प्रल्हाद और बड़ा हो गया, वह बराबर भगवान की बातें ही सोचा करता था—एक दिन हिरण्य कश्यप ने गुरु शुक्राचार्य को बुलाकर कहा—आप हमारे कुल गुरू हैं, प्रल्हाद को आप अब हमारे वश परंपरा के स्वरूप शिक्षा दीजिये। शुक्राचार्य ने कहा—बहुत अच्छा राजन, मैं प्रल्हाद को गुरूकुल को लिये जाता हूँ और शीघ्र ही शस्त्र और शास्त्र में निपुण कर दूँगा। इतना कह वे प्रल्हाद को लेकर चले गये। उन्होंने उसे सण्ड और अर्भक नामक विद्वानों को सौंप दिया, वे दैत्यों की सभा के महापण्डित थे प्रल्हाद ने जब उनके सामने भी भगवान की चर्चा की तो उन्होंनें उसे बहुत रोका पर ज्यों-ज्यों प्रल्हाद को भगवान की चर्चा से रोका गया त्यों-त्यों वह अधिक भगवान की चर्चा करने लगे। धीरे-धीरे विद्यार्थियों में भगवान के सम्बन्ध में विवाद बढ़ चला। सण्ड और अर्भक ने यह देखा तो बहुत घबराये—क्योंकि वह जानते थे कि राजा को अगर इस बात का पता लग गया तो वह बिना प्राण लिये न छोड़ेगा। उन्होंने प्रल्हाद और विद्यार्थियों को बहुत डाटा-डपटा पर कुछ भी लाभ न हुआ विद्यार्थियों में भगवान की चर्चा बढ़ती ही गई। अब प्रल्हाद पीटा भी जाने लगा। परन्तु फिर भी उल्टा ही असर

हुआ। बालकों ने गुरु लोगों के विपरीत एक गुट्ट बनाली। लाचार हो गुरु ने प्रल्हाद को राजा के सामने उपस्थित कर कहा— कि यह भगवान का नाम लेता है, पढ़ता-लिखता कुछ नहीं।

राजा ने सब बातें सुनीं तो वह क्रोध से थर-थर काँपने लगा। उसने प्रल्हाद से पूछा —"क्या यह सच है ?"

"क्या बात पिता जी ?"

"कि तुम मेरे शत्रु भगवान् का नाम लेते हो ?"

"भवान तो किसी के शत्रु नहीं पिता जी।"

"अरे मूर्ख, मेरे ही सामने भगवान् की बड़ाई करता है।"

"भगवान बड़े हैं, बड़ाई के योग्य हैं इसी से पिता जी।"

"अरे कुलकलंगी, तू दैत्य वंश का राहु है। तूने गुरुकुल के सभी विद्यार्थियों को मुझ से विद्रोही बना दिया है।"

"नहीं पिता जी, वे सिर्फ भगवान की पूजा करते हैं।"

हिरण्य कश्यप ने क्रोध से लाल होकर कहा—अरे अभागे, भगवान् मैं हूँ इस पृथ्वी पर, मेरी ही पूजा होनी चाहिए।

"परन्तु पिता जी आप भगवान् नहीं हो सकते—आप क्रोध करते हैं, भगवान् क्रोध नहीं करते।"

"कौन है ? वह भगवान्।"

"जिसने आपको और मुझे बनाया है।"

"यह सुनकर हिरण्य कश्यप ने अध्यापकों से कहा—"क्यों रे अधम ब्राह्मणों तुम ने मेरे पुत्र को यही शिक्षा दी है ! "मैं तुम्हें कोल्हू में पिलवा दूँगा।"

"प्रल्हाद ने हाथ जोड़कर कहा—"नहीं पिता जी, इसमें गुरु जी का दोष नहीं। मुझे तो भगवान ने स्वयं सच्चा ज्ञान दिया है, और सब विद्यार्थियों को मैंने सिखाया है। मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि आप भी क्रोध और अहंकार को छोड़ कर भगवान में अपना मन लगाइये।

इस पर दैत्यराज, दाँत पीसता हुआ सिंहासन से उठ खड़ा हुआ और कहा—अच्छा रे अच्छा, अधम तू मुझी को उपदेश देने का साहस करता है।

उसने तत्काल बधिक को बुलाने को आदेश दिया, बधिक के आने पर कहा—श्मशानमें ले जाकर इसका तलवार से सिर काट ले। मेरे राज्य में भगवान का नाम लेने वाला जीवित नहीं रह सकता। प्रल्हाद ने पिता को प्रणाम किया और जल्लाद के साथ हो लिया। राज सभा के लोग शोक और आश्चर्य से बालक की वीरता को देखकर दंग थे। बधिक उसे लेकर जब मरघटमें पहुँचे तो वहाँ का भयंकर दृश्य देखकर भी प्रल्हाद वैसा ही शान्त रहा। जल्लादों का उस पर हाथ नहीं उठता था उन्होंने कहा—कुमार हमारा अपराध नहीं है हम राजा के दास हैं।

प्रल्हाद ने कहा—तुम अपना काम करो भाइयो, भगवान तुम्हें क्षमा करेंगे।

परन्तु जल्लाद प्रल्हाद पर वार न कर सके। उनका हाथ ही न उठा, उनके हाथ काँप गये और तलवार छूट कर धरती पर जा पड़ी और वे घबरा कर भाग गये।

दैत्य राज ने सुना तो उसने क्रोध से अधीर होकर प्रह्लाद को अन्ध कूप में कैद कर दिया। और लोगों से कहा कि उसे समझा-बुझा कर ठीक करें जिससे वह भगवान् का नाम न ले। परन्तु प्रह्लाद को तो अब सिर्फ भगवान का आसरा था उसकी माता ने रो कर उसे बहुत समझाया—परन्तु उसने माता को ढाढ़स देकर कहा—माता घबराओ मत भगवान् सब भला करेंगे।

जब हिरण्य कश्यप ने सुना कि यह अपनी हट पर डटा है। तो मतवाले हाथी के पैरों तले कुचल डालने की आज्ञा दी।

मतवाला हाथी लाया गया। और बालक प्रल्हाद को उसके सामने लाया गया। हाथी ज़ोर-ज़ोर से चिंघाड़ने लगा। लोग यह दृश्य देख भय-भीत हो गये। सब समझते थे कि अब बेचारे प्रल्हाद की चटनी यह मतवाला हाथी कर डालेगा। परन्तु प्रल्हाद को भय नहीं था उसे विश्वास था कि भगवान् मेरे रक्षक हैं। ज्यों ही वह दुर्दांना हाथी प्रल्हाद के पास आया उसने उसे सूंड से उठाकर मस्तक पर बैठा लिया। सब दर्शक अवाक रह गये।

राजा ने अधीर होकर कहा—इस अभागे को काले नाग से डसवा दो। प्रल्हाद को कारागार में बन्द कर दिया गया और उस कोठरी में विषधर सर्प छोड़ दिया गया। प्रल्हाद ने सर्प को भी भगवान् के रूप में देखा—स्तुति करने लगा। सर्प चुप-चाप एक ओर गेडुंली मार कर बैठ रहा। प्रातःकाल पहरूओं ने देखा—प्रल्हाद अचेत पड़ा सो रहा है और सांप फन उठाकर उसके सिर पर छाया कर रहा है। यह सब समाचार सुन कर राजा चिंता में पड गया।

उसने मन्त्रियों से सलाह कर उसे हलाहल विष देने का संकल्प किया। विष मिले हुए लड्डू उसके पास भेजे गये। और उस ने भगवान् का नाम लेकर वे खा लिये, परन्तु इतने पर भी उसकी मृत्यु न हुई। अन्त में निरुपाय हो हिरण्य कश्यप ने प्रल्हाद को धधकती चिता में भस्म कर देने की आज्ञा दे दी।

बड़ी भारी चिता बनाई गई, और उसमें प्रल्हाद को हाथ-पाँव बाँध कर डाल दिया। चिता जल कर ठण्डी हो गई—प्रल्हाद वैसे ही बैठे रहे। तब हिरण्य कश्यप की बहिन ने कहा—मुझे बरदान है कि मैं आग में नहीं जलूँगी। मैं प्रल्हाद को आग में लेकर बैठूँगी। बस फिर चिता जलाई गई। और ढुढ़ा प्रल्हाद को गोद में लेकर बैठी—आग लगाई गई, ढुढ़ा जल कर भस्म हो गई—प्रल्हाद बैठे-ही रहे।

४

इन सब बातों से प्रल्हाद का नाम दूर-दूर फैल गया। लोग दूर-दूर से प्रल्हाद के दर्शन को आने लगे। और घर-घर भगवान् की चर्चा होने लगी। प्रल्हाद भी अब भगवान् का कट्टर भक्त हो गया। राजा ने उसे ऊँचे पर्वत पर ले जाकर ढकेलने की आज्ञा दी। और वह हाथ-पाँव बाँध कर समुद्र में फेंक दिया गया। परन्तु प्रल्हाद को तब भी चोट न आई।

प्रल्हाद पर जो इतने असीम अत्याचार हुए और प्रल्हाद की भारी भक्ति देखी तो प्रजा का हृदय प्रल्हाद के लिये पसीज उठा—सब कोई प्रल्हाद की शुभ कामना करने लगा। और भगवान् की

सत्ता का सभी को श्रद्धा होने लगी राजा यह सब बातें देख कर क्रोध से उन्मत्त हो गया। और उसने प्रल्हाद को अपने सन्मुख महल में लाने की आज्ञा दी। प्रल्हाद ने पिता को देखकर विनय-पूर्वक प्रणाम किया।

राजा ने कहा—अरे अभागे, क्या अब भी तेरी बुद्धि ठिकाने नहीं लगी? मैं अपने हाथों तेरा बध नहीं किया चाहता था, पर अब देखता हूँ मुझे अपने ही हाथों से तुझे बध करना होगा। देखूँगा तुझे कौन मेरे हाथों से बचाता है तू अपने भगवान् को बुला ले।

प्रल्हाद ने कहा—पिताजी भगवान को कहाँ से बुलाऊँ—वह तो सब जगह व्यापक है—उसके बुलाने की क्या जरूरत है। राजा ने तब एक लोहे का खम्बा तैयार कराकर उसे आग में तपा कर लाल कर दिया। इसके बाद प्रल्हाद को खम्बे से बाँध दिया। एक बार लोहे के उस लाल-लाल खम्भे को देखकर प्रल्हाद को भय हुआ पर तुरन्त ही उसने देखा कि खम्भे पर चींटियाँ चढ़ रही हैं। बस उसे साहस हो आया, ज्यों ही प्रल्हाद को खम्भे से बाँधा गया—धरती हिलने लगी भयानक शब्द होने लगे—तुरन्त भीषण शब्द के साथ खम्बा फटपट पड़ा और उस में से एक अद्भुत मूर्ति निकल पड़ी उसका आधा शरीर सिंह का और आधा मनुष्य का था। उसे देख कर हिरण्य कश्यप डर से काँपने लगा। उसने विकट चीत्कार कर उसे अनायास ही पंजों में उठा लिया और दहलीज पर बैठकर अपनी जाँघों में रख कर उसका पेट चीर डाला और आँतें अपने गले में डाल लीं।

इस प्रकार उस दैत्य राज का अंत हुआ प्रल्हाद ने उस नृसिंह मूर्ति के चरणों में सिर नवाया।

उसने प्रल्हाद को गोद में उठा कर कहा—'पुत्र वर मांग'।

प्रल्हाद ने हाथ जोड़कर कहा—भगवान् मुझे यही वर दीजिए कि आप की भक्ति मेरे मन में रहे और मेरे पिता का अपराध क्षमा कर उन्हें मुक्ति मिले।

नृसिंह ने कहा—ऐसा ही होगा। अब तुम सिंहासन पर बैठ धर्म-पूर्वक राज्य करो।

प्रल्हाद ने भक्ति पूर्वक उन्हें प्रणाम किया। नृसिंह जी आशीर्वाद दे अन्तर्ध्यान हो गये। और प्रल्हाद फिर राज सिंहासन पर बैठ कर धर्म राज्य करने लगे।

: १० :

बालक दुर्गादास

राठौर कुल केसरी वीर दुर्गादास अपने बचपन में एक साधारण किसान के बेटे थे। इनके पिता अपने छोटे से खेत में दिन भर काम किया करते थे और बालक दुर्गादास उनकी सहायता किया करता था। अनाज पक चुका था, राज्य के ऊँटों का एक झुण्ड पके हुए खेतों में घुसकर खेत को बर्बाद करने लगा। राज के ऊँटों को रोकने का साहस किसानों में कहाँ? परन्तु इस समय दुर्गादास बालक अपने खेत की रखवाली कर रहा था। सालभर की बड़े कसाले की कमाई को वह इस प्रकार बर्बाद होते नहीं देख सकता था, उसने चरवाहे से कहा—कि वह ऊँटों को खेत में जाने से रोके परन्तु राज्य की नौकरी के मद में मस्त चरवाहे ने बालक दुर्गादास की बात हँसी में टाल दी।

दुर्गादास का तेजस्वी स्वभाव भला कहाँ ऐसा अपमान सहन कर सकता था। उसने ललकार कर कहा—कि जो ऊँट मेरे खेत में आवेगा मैं उसी को मार डालूँगा।

चरवाहे ने यह बात बालक की कोरी धमकी ही समझी। परन्तु ज्यों ही एक ऊँटनी ने खेत में क़दम रखा दुर्गादास ने तलवार सूँत कर एक ही हाथ में उसकी गर्दन काट डाली। यह देखकर ऊँट चिल्लाते हुए वहाँ से भाग खड़े हुए। चरवाहा भी डर कर भाग गया।

दुर्गादास के पिता आसकरण जी ने सुना तो वे बहुत डरे। पर निर्भय दुर्गादास ने कहा—अपराध मेरा है इस लिए राज से जवाब तलब होने पर आप मुझे आगे कर देना, मै सब निबट लूँगा आप कोई चिन्ता न करें।

महाराज जसवन्त सिंह उन दिनों जोधपुर के अधिपति थे। उन्होंने आसकरणजी को जवाब के लिए दर्बार में तलब किया। वे पुत्र दुर्गादास को साथ लेकर महाराज की सेवा में जा हाज़िर हुए। महाराज ने उनसे कहा—"क्या सरकारी साँडनी को तुमने तलवार से मारा था।"

"नहीं महाराज यह अपराध इस बालक से हो गया।"

महाराज ने बालक दुर्गादास की ओर देखा—वह निर्भय दर्बार में खड़ा था—कुछ देर उसकी ओर देखकर महाराज ने उससे पूछा—"ऊँटनी तुमने मारी थी?"

"जी हाँ महाराज।"

"यह जानते हुए भी कि यह सरकारी है।"

"जी हाँ महाराज!"

"तुमने ऐसा क्यों किया?"

"महाराज, वह मेरे खेत को बर्बाद कर रही थी—हम ग़रीब किसान हैं। उसी छोटे से खेत पर हमें साल भर गुज़र करनी होती है।"

"चरवाहे को तुमने क्यों नहीं कहा।"

"कहा था महाराज"

"उसने ऊँटों को रोका नहीं।"

"जी नहीं, उल्टा मुझ ही को धमकाने लगा।"

"तुमने ऊँटनी कैसे मारी?"

दुर्गादास ने इधर-उधर देखा। एक ऊँट चर रहा था। उसने लपक कर तलवार निकाली और एक ही हाथ में उसका सिर धड़ से जुदा कर दिया। फिर महाराज के पास आकर कहा—"इस तरह महाराज।"

बालक दुर्गादास की वीरता, साहस, और निर्भयता को देख कर महाराज बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने आसकरण जी से कहा—ठाकरों तुम घर जाओ, दुर्गादास हमारे काम का आदमी है यह हमारे पास रहेगा।

तब से दुर्गादास महाराज जसवन्तसिंह के पास रहने लगा। आगे चलकर दुर्गादास ने जो अमर कारनामे किये वे इतिहास में प्रसिद्ध हैं।

: ११ :

स्कूल के सहपाठी

फ्राँस के प्रसिद्ध न्यायाधीश की वर्ष गाँठ थी और उसमें नगर के चुने गण्यमान्य पुरुष उपस्थित थे। बढ़िया-बढ़िया खाद्य-पदार्थ मेज़ पर चुने धरे थे, बहुमूल्य मदिराओं की सुगन्ध उड़ रही थी। न्यायाधीश जो बड़े रूखे और कड़े मिज़ाज के प्रसिद्ध न्यायी विख्यात थे। इस समय सरल बालक की भाँति अपने बाल-काल की एक महत्वपूर्ण घटना सुना रहे थे, उन्होंने कहा—मित्रो, आप सब दोस्तों को यहाँ पाकर मैं अत्यन्त आनन्दित हुआ हूँ, लेकिन एक काँटा बचपन से मेरे मन में चुभा है। आज ७० साल जीवन के काट चुकने पर भी मैं वह काँटा दिल में गड़ा अनुभव करता हूँ। मुझे जीवन में बड़े-बड़े मित्र मिले, जिनकी बदौलत मुझे यह पद और रुतबा हासिल हुआ है। परन्तु वैसा मित्र न मिला, न मिल सकता है। एक बार वह मित्र मुझे मिल जाय और मैं उसकी मित्रता से उऋण हो सकूँ, तो जीवन सफल समझूँ।

बूढ़े नीरस जज के मुख से ऐसी सरस वार्ता सुनकर सब लोग आश्चर्य चकित हो गये। सबने एक स्वर से कहा—कृपा कर अपने उस अनन्य मित्र की वार्ता विस्तार से सुनाइये।

बूढ़े जज ने सुगन्धित मद्य की एक चुस्की ली और फिर कुछ कहने को ज्योंही उसने मुँह खोला था—उसके ख़ास कर्मचारी ने आकर धीरे से कहा—श्रीमान बाहर पुलिस के सर्वोच्च अधिकारी

उपस्थित हैं। वे इसी समय कुछ निवेदन किया चाहते हैं? उनके साथ एक क़ैदी है। उसी के सम्बन्ध में वे आवश्यक आदेश चाहते हैं।

जज ने क्षण भर सोच कर कहा—वह क़ैदी कौन है?

कर्मचारी ने कहा—वह प्रसिद्ध विद्रोही नेता है, जिसको जीता या मरा गिरफ्तार करने के लिये सरकार ने १० हज़ार स्वर्ण-मुद्रा की घोषणा की थी। बड़ी कठिनाई से यह दुर्दान्त डाकू पकड़ा गया है, और बाहर उसे देखने को अपार भीड़ इकट्ठी हो रही है। महमान इस नई घटना से और भी चकित हुये। सभी उस प्रसिद्ध विद्रोही को देखने को उत्सुक हो उठे, जो देश भर में प्रसिद्ध हो चुका था। और जिसका आतंक देश भर में व्यापा हुआ था, सबने कहा—कृपा कर उसे यहाँ बुलाइये। जज ने क्षण भर सोच कर कहा—यहाँ उन्हें बुला लाओ।

ज़ञ्जीरों से जकड़ा हुआ वह धीर पुरुष लोहे के समान बलिष्ट-छाती ऊँची किये सामने आ खड़ा हुआ। जज ने खड़े हो कर उसका स्वागत किया और कहा—मेरे वीर-मित्र, तुम्हारी वीरता से मैं यह आशा करता हूँ कि तुम विश्वासघात न करोगे, आज मेरी वर्षगाँठ है। मैं आपको इसमें सम्मिलित होने को आमन्त्रित करता हूँ, कृपा कर स्वीकार कर मुझे बाधित करें।

विद्रोही ने मुस्करा दिया। जज ने उसकी हथकड़ियाँ खोलने की आज्ञा दे दी, और अफ़सर ने आदेश पालन किया, इसके बाद जज ने अपने पास ही उसके लिये एक कुर्सी रखवा दी।

दावत का काम उसी भाँति चलता रहा। महमानों ने जज को फिर उसी बाल-मित्र की याद दिलाई, जज ने कहा—जब मैं स्कूल में एक छोटे दर्जे में पढ़ता था, तब की बात है। गाँव का साधारण स्कूल था। और मैं बचपन ही से दुबला-पतला और कमजोर रहा हूँ, जहाँ हमारी क्लास थी उसके और एक दूसरी क्लासके बीच एक पर्दा पड़ा रहता था। मास्टर की सख्त हिदायत थी कि कोई उस पर्दे को न छुये। जो उस पर्दे को छुयेगा उसे २० बेतों का दण्ड मिलेगा। दण्ड के भय से कोई उस पर्दे को नहीं छूता था।

परन्तु दुर्भाग्य से एक दिन पर्दा मुझसे छू गया। परदे के छूते ही मास्टर ने ललकार कर पूछा- किसने पर्दा छुआ है? मैं डर से थर थर कांपने लगा, २० बेत खाने की मुझ मे सामर्थ्य नहीं थी। परन्तु मैं कांपते-कांपते खड़ा हो गया। मेरी जीभ तालु से सट गई मै कहना चाहता था कि अपराध मैंने किया है।

इतने ही में मैंने आश्चर्य से देखा दूसरी और कक्षा में मेरे पास जो लड़का बैठा करता था वह उठा, उसने मासस्टर के पास जाकर धीर-गम्भीर स्वर में कहा—'मैंने अपराध किया है।

मैंने एक बार फिर कहना चाहा कि अपराधी मैं ही हूँ पर मेरी बोली न निकली। बेतों की भयानक मार वास्तव मे मैं नहीं सह सकता था। मास्टर की आज्ञा से २० बेतोंकी सजा उसबालक को देदी गई। बेतों की चोट से उसके हाथ लोहू-लुहान हो गये। और उनसे खून टपकने लगा। पर बालक के चेहरे पर वेदना का कोई

चिह्न न था, वह मुस्कुरा रहा था। जब वह बेत खाकर अपने लोहू-लुहान हाथों को लेकर मेरे पास से हो कर गुज़रा तो उसने दया-पूर्ण-दृष्टि से मेरी ओर देखकर मुस्कुरा कर धीरे से कहा—दोस्त! बेत से बड़ी चोट लगती है, अब कभी उस परदे के पास न जाना।

वह चला गया और मैं निर्जीव-सा होकर अपनी जगह पर जा बैठा। दूसरे दिन वह स्कूल नहीं आया, फिर वह कभी नहीं आया। मैंने उसे बहुत ढूँढा, उसे ढूँढने में अपना जीवन बिता दिया। परन्तु अफ़सोस है कि मेरा वह दोस्त अब तक मुझे नहीं मिला, मैं समझता हूँ कि मुझे उसका यह ऋण सिर पर लेकर ही मरना होगा।

एक सहज गम्भीर ध्वनि हुई। सबने आश्चर्य-चकित नेत्रों से देखा कि वह तेजस्वी क़ैदी धीरे से अपने स्थान से उठ कर कह रहा है—मैं ही वह बालक हूँ और आपको उस ऋण से मुक्त करता हूँ। आपको कायर और अशक्त समझ कर ही मैंने वह साहस किया था, मैं काफ़ी बलवान था और आपकी अपेक्षा आसानी से बेतों की चोट सह सकता था, आज भी मेरी वही आदत बनी हुई है। अपने जीवन में मैंने दूसरों के लिये ही चोट खाई हैं।

सब चुप थे जज मानों मुर्दा होगये थे, शब्द भी उनके मुँह से न निकला। उसी सन्नाटे में दावत ख़तम हुई। सब लोग अपने-अपने घर गये। क़ैदी फिर हथकड़ी-बेड़ियों से जकड़ दिया गया और जेल में डाल दिया गया।

२

यथा नियम जज के इजलास में क़ैदी उपस्थित किया गया। इजलास में बड़ी भीड़ थी, सभी जज और उस विद्रोही के बाल-सम्बन्ध को जान गये थे। मुक़द्दमा बड़ी छान-बीन से चला, अब सिर्फ हुक्म सुनाना था। अपने उस उपकारी मित्र के लिये—जिसे ढूँढने में उसने जीवन व्यतीत किया, जज क्या हुक्म सुनाता है, यहाँ उसके न्याय की परीक्षा थी। पर जब स्थिर कंठ से जज ने अपराधी को प्राणदण्ड की आज्ञा सुना दी, तो सब लोग आश्चर्य चकित हो गये। क़ैदी ने मुस्कुरा कर धन्यवाद दिया।

जज ने स्थिर वाणी से कहा—बादशाह से दया प्रार्थना के लिये तुम्हें एक सप्ताह का अवकाश दिया जाता है। और इसके बाद अदालत से चला गया। जज के इस फैसले से उसकी न्याय-निष्ठा की धूम मच गई।

दूसरे दिन जज न्यायासन पर न था। उसने एक सप्ताह की छुट्टी लेली थी वह सीधा बादशाह से मिलने गया था—जो इन दिनों राजधानी से दूर मुक़ीम था। बादशाह के पास जाकर उसने अपना स्तीफ़ा पेश कर दिया। और बादशाह के कारण पूछने पर उसने सब हाल बता दिया।

बादशाह ने जज की शिफ़ारिश से न केवल उसका प्राण-दण्ड क्षमा कर दिया—प्रत्युत उसे उसी प्रान्त का गवर्नर बना दिया जिस में उसने विद्रोह का झण्डा ऊँचा किया था।

: १२ :

अंग्रेज़ वीर बालक

लेडी फ़ास्टर को खाट में पड़े आज नौ महीने बीत गये, पर अभी तक उसके आराम होने का कोई लक्षण नहीं दीखता, डाक्टर भी अब वैसे उत्साह की बात नहीं कहता. नौकर, चाकर, दाई उदास भाव से अपनी मालकिन का उदास मुख देख रहे हैं, छोटी सी रोज़ अपने बड़े भाई टामस के कन्धे पर झूल कर रो रही है। टामस भी उसके सिर पर हाथ फेर कर चुप-चाप दिलासा देने की चेष्टा कर रहा है। पर बोल मुँह से नहीं निकलता, उसका भी जी अन्दर ही अन्दर रो रहा है। आज हवा बड़ी तेज़ और ठण्डी चल रही है—रह-रह कर किवाड़ों से टकराती है। लेडी फ़ारेस्ट की तबियत आज और भी ख़राब है। खाँसी के मारे दम नहीं जुड़ता। कल से कुछ खाया भी नहीं है। अभी डाक्टर के आने की बात है, पल-पल में सब की दृष्टि द्वार की ओर जाती है। अन्त में डाक्टर आए। रोगी को देखकर खिन्न स्वर में बोले, मौसम बहुत ख़राब है, ज़रा सावधानी से रोगी को रखना चाहिए। बाहर हवा बड़ी तेज़ है देखो बेचारी कब से कष्ट भोग रही है, भगवान् इन्हें सुखी करें। डाक्टर की बातों से सभी की उदासी बढ़ गई। रोगी ने धीमे-स्वर से कहा—मैं समझती हूँ, सब समझती हूँ साहब! मुझे अपने जीवन की टिम-टिमाती ज्योति स्वयं दीख रही है। इन बच्चों को ईश्वर के भरोसे छोड़ती हूँ मेरा अपना कोई नहीं है .... ।

डाक्टर ने बीच ही में बात काटकर कहा—"वैसा घबराने का तो कोई लक्षण मैं नहीं देखता, आप ऐसी घबराती क्यों हैं ?"

लेडी ने डाक्टर का हाथ पकड़ लिया, उसने कहा—"अब आप भुलावा न दें—मुझे दीख रहा है, धीरे-धीरे मेरी अन्तिम घड़ी निकट आ रही है, मेरे लिए आप एक तकलीफ़ करेंगे ?

"खुशी से, डाक्टर ने कहा।"

"मैं चाहती हूँ टामस फ़ौजी स्कूल में भर्ती होकर फ़ौजी शिक्षा पावे। इसके लिए क्या आप मेरे सहायक होंगे ? टामस के पिता की मरते दम तक यही अभिलाषा रही, पर वह छोटा, बहुत ही छोटा था। जब वे बोअर युद्ध में काम आए थे।"

डाक्टर ने स्वीकार कर लिया और कल आने को कहकर चल दिये। घर में फिर उदासी और सन्नाटा छा गया—दूसरे ही दिन डाक्टर टामस को बिदा कराने आ गया। वह पहिले ही से तैयार था। रोज़ उस से रोते-रोते लिपट गई। टामस माता के बिस्तरे के पास घुटनों के बल बैठ गया। माँ ने बड़े स्नेह से उसे विदा किया और कहा—"तेरा पिता सच्चा अंग्रेज़ था उसकी वीरता को अपने पराये सभी जानते हैं, तुम उसी के योग्य पुत्र बनो, मेरी तुम्हें यही आसीस है, और लो एक चीज़ देती हूँ, इसे मेरी स्मृति में सदा पास रखना, यह कहकर उसे अपनी छोटी सी तस्वीर दे दी। वैसी ही एक तस्वीर रोज़ ने भी पाई, टामस चला गया, उसी सप्ताह में बेचारी उसकी माता भी सिधार गई।

सात वष बीत गये, टामस अब अच्छा जवान हो गया है।

अभी रेखें नहीं आई हैं, उठता हुआ सीना और तेजस्वी मुख बहुत ही भला लगता है, एक बात और है उसे कभी कोई उदास नहीं देखता। इन सात वर्षों में उसने सेना-विभाग, नौ सञ्चालन तथा जासूसी की बड़ी-बड़ी डिग्री प्राप्त कर ली हैं। यह सारी शिक्षा उसकी रुचि में उसे मज भी गई।

टामस यद्यपि अपने काम में सदा प्रसन्न रहता, पर अपनी माता के उस चित्र को देखकर वह कभी-कभी उदास हो ही जाता, कभी रात को किवाड़ बन्द करके, कभी दोपहरी को वृक्ष के नीचे, कभी मनोरम प्रभात में नदी के किनारे वह उस चित्र को देखा करता है। छाती पर जहाँ उसकी माँ ने रख दिया था वहीं उसका स्थान नियत रहा। उसकी बहिन की धुंधली स्मृति उसे घर चलने को कहती थी। शिक्षा काल भी समाप्त हो चला था, उसने एक बार घर हो आने का इरादा कर ही लिया।

समय दोपहर का था, ऋतु सुन्दर थी. आकाश में एकाध-बादल दौड़ रहे थे। टामस एक पेड़ के नीचे एक डाल को पकड़े खड़ा घर की याद करते-करते गीत गा रहा था।

गाते गाते टामस ने देखा—स्कूल के मास्टर उसके गुरु, उसी की ओर चले आ रहे हैं। उन्हें देखते ही टामस दौड़कर उनके पास पहुँचा और हँसकर कहा—कहिए क्या हुक्म है ?

"टामस !" गुरु ने उसकी पीठ पर हाथ फेर कर कहा—"देखते हो युद्ध की यह भीषणता बढ़ती ही जा रही है, अब अपनी मान रक्षा में ब्रिटिश ने भी तलवार खींचना निश्चयय कर लिया है।"

उत्तेजित होकर टामस ने बीच ही में बात काट कर कहा—"और क्या ब्रिटिश जाति मर्द नहीं ?"

मास्टर ने प्यार से पीठ ठोक कर कहा—"यही तो टामस ! देखता हूँ, तुम भी युद्ध के लिये उत्सुक हो रहे हो ?"

टामस ने अपनी चमकदार आँखें मास्टर के मुख पर गड़ाकर कहा—"क्यों नहीं महाशय ! युद्ध में जाना हो तो घर भी न जाऊँ। मास्टर ने देखा उसके नेत्रों में सरलता और अनुराग के चिह्न विराजमान हैं।

मास्टर ने टामस का हाथ पकड़ कर कहा—प्रसन्नता की बात है तुम्हारी इच्छा शीघ्र ही पूरी होती दीखती है, देखो न यह जासूस विभाग से तुम्हारे लिये फ़रमान आया है. स्कूल में तुम्हारे ही ऊपर मेरी दृष्टि रही है। मुझे विश्वास है कि तुम अपने स्कूल का नाम उज्ज्वल ही करोगे। सच तो यों है कि मुझे तुम पर बहुत ही भरोसा है। गाड़ी ४ बजे जाती है अभी ३ बजे हैं, एक घण्टे का अवकाश बहुत होता है, शायद तुम्हें भी कुछ देर नहो है। टामस ने खुले मुख से कहा—कुछ भी नहीं महाशय, केवल बिस्तरा बांधना है।

मास्टर बोला—सो कुछ नहीं सब ठीक है, वह स्टेशन भेज दिया है—तुम्हारे सब साथी भी वहीं तुम्हें बिदा करने के लिये उपस्थित हैं।

टामस ने टोपी उठाली और उत्साह से कहा—तो फिर चलिए देर क्या है ? पास ही तो स्टेशन है, टहलते-टहलते चलें।"

२

टामस को इस विभाग में ४-६ मास बीत गये हैं, इसी बीच में वह अपने गुणों से सभी का आदर पात्र बन गया है। जासूस विभाग के प्रधान उस पर बड़ा भरोसा करते हैं। इसी बीच में उसने कई मार्के के काम भी कर डाले हैं, सब से बड़ी बात तो यह है कि वह कभी उदास या सुस्त नहीं रहता। भारी-से-भारी काम को वह गुनगुनाता ही कर डालता है।

आज वह किसी खोज में जाकर तीन-दिन में लौटा है, कपड़ों पर धूल जम गई है उसके चेहरे को देखकर साफ़ मालूम होता है कि इन दिनों में न उसे सोना ही नसीब हुआ है, न खाना ही मिला है। अभी वह कोट उतार ही रहा था कि नौकर ने सबसे बड़े अफ़सर के आने की ख़बर दी। कोट उतारते-उतारते उसने फिर पहन लिया, और उनके स्वागत को चला, द्वार पर ही उनसे भेंट हो गई। देखते ही अफ़सरने कहा—टामस देखता हूँ तुम बहुत थके हुए हो।

"ओह नहीं साहब !" टामस कभी नहीं थकता, हुक्म ? कह कर टामस सरलतासे हँस पड़ा। उसने देखा अफ़सर की आवाज़ भर्रा रही है पर टामस के उत्तर से उसे कुछ ढारस हुआ उसने कहा—तब तुम क्या अभी लम्बा सफ़र कर सकते हो ?

टामस ने तत्क्षण कहा—"हाँ कर सकता हूँ "

धन्यवाद, कह कर आफ़िसर भीतर चले आए। बैठकर कहने लगे टामस भारी संकट आया है....में भारी युद्ध हो रहा है सेना का तीन दिन से समाचार नहीं मिला। पीछे से जर्मनों के पहुँच

जाने से रसद भी नहीं जा सकती। उसके ठीक समाचार कैसे मिलें, टामस उठ खड़ा हुआ। "मैं सब ठीक कर लूँगा—अभी चला।" इतना कह कुछ बिस्कुट जेब में भरे, दो दस नली पिस्तौल, बारूद, फलीता कुछ बम के गोले, एक कैमरा, एक दूरबीन, आदि आवश्यक सामान लेकर चल खड़ा हुआ, घोड़े पर थपकी दी, और घोड़ा उड़ चला। टामस को सभी जानते थे। जहाँ कोई जान-पहचान का मिल जाता स्वागत करता, टामस भागते-ही-भागते टोपी उतार हँसते-हँसते स्वागत करता चलता गया।

घोड़ा उड़ा चला जा रहा था। भूख लग रही थी, जेब भी बिस्कुटों से भर रही थी। जेब से एक बिस्कुट निकालकर मुँह में डाला ही था कि एक गोली सनसनाती आई और कान के पास से निकल गई, टामस तुरन्त घोड़े से इस प्रकार गिर पड़ा मानों गोली काम कर गई हो। घोड़ा भी वहीं खड़ा हो गया, उसका दाहना बाजू ज़ख्मी हुआ था। उस में से खून बहने लगा। टामस ने पड़े-पड़े जल्दी से एक पट्टी घोड़े के ज़ख्म पर बाँध दी। और एक पर्चे में लिखा कि ....दक्षिण सेना भेजो.........पर, मेरी सहायता करो। "चिट्ठी घोड़े का ज़ीन में खोंस दी, और चाबुक मार दिया। घोड़ा घर की ओर भाग चला जहाँ उसका खून पड़ा था—वहीं छाती रख कर टामस औंधा पड़ रहा। इसके दो ही मिनट बाद पाँच छः जर्मन सिपाही, अफ़सर बन्दूकें लिए दौड़े-दौड़े वहाँ आये उनमें से एक ने कहा—"जीता है ?"

दूसरा—कहाँ ? मर गया साला।

तीसरा देखो तो! कुछ सांस है भी।

पहला—होशियार, देखो हमला न करे।

दो आदमियों ने एक हाथ में पिस्तौल लिया। एक ने उसे सीधा किया। उसका बदन अकड़ गया था। और छाती खून में भर गई थी। मुँह में बिस्कुट भी था। वह कुछ बाहर भी आ गया था, दोनों बोल उठे 'मर गया, गोली साले की छाती को पार कर गई।

अब अफ़सर ने कहा—ठीक इसे इस ग़ार में डाल कर मिट्टी दे दो। दो आदमी रहो। अफ़सर लौट गया—दो सिपाही रह गये उन्होंने टामस की टाँग पकड़कर ग़ार में धकेल दिया। और मिट्टी भरने लगे। टामस बेचारा चुप-चाप पड़ा रहा।

एकाएक साँय-साँय की आवाज़ आकाश में गूंज गई। जर्मन सिपाहियों ने देखा अंग्रेज़ी हवाई जहाज़ हैं उनके देवता कूच कर गये। और एक-एक कर भाग खड़े हुए। टामस ने विषम साहस किया। और अपने ऊपर की मिट्टी हटाकर सीधा ब्रिटिश लाइन की ओर चल दिया। ठीक समय पर उसने वह महत्व पूर्ण पत्र अपने अफ़सर को दे दिया। और उसी रात सूर्योदय से पूर्व ही उस अफ़सर ने पत्र में लिखी योजना के आधार पर मोर्चे को फ़तह कर लिया। परन्तु इस विजय का सेहरा टामस के सिर बँधा, और उसे विक्टोरिया क्रास मिला।

: १३ :

बालक एडीसन

एक छै वर्ष के बालक ने देखा कि एक बत्तख अपने अण्डों पर बैठी उन्हें से रही है। इस दिलचस्प तमाशे को वह कई दिन तक बैठा बड़े ध्यान से देखता रहा। कुछ दिनों में अण्डों से बच्चे निकल आए यह देख उसे बहुत आनन्द हुआ। उसने मन में सोचा मैं भी इसी तरह अण्डे सेऊँ तो बच्चे निकल आवेंगे। यह सोच उसने बहुत से अण्डे इकट्ठे किये, और घोंसला बना उन पर बैठ गया, तथा धैर्य से इस बात की प्रतीक्षा करता रहा कि अण्डों में से कब बच्चे निकलेंगे।

जब बच्चे की माता को बच्चा नहीं दीखा तो उसकी खोज पड़ी। खोजते-खोजते उसने देखा कि बच्चा तो अण्डों पर बैठा हुआ है। इसका कारण पूछकर उसकी माँ ने घोंसला नोंचकर फेंक दिया और अण्डे उठा कर ले गई।

यही बालक एडीसन था। यह एक निर्धन माता-पिता के घर पैदा हुआ था। इस कारण बचपन ही से इसके माथे पर आजीविका का बोझ आ पड़ा था कुछ बड़ा होने पर उसने रेल में अखबार बेचने का काम शुरू किया। इस काम में खूब सफलता मिली। और वह अपनी उन्नति करने के नये-नये उपाय सोचने लगा। कुछ दिन बाद उसने कुछ पुराना टाइप और थोड़ा छापने का समान खरीद लिया, और गार्ड से उसके डब्बे में थोड़ी सी जगह माँग

कर एक छोटा सा अखबार छापना शुरू कर दिया। इस वक्त उस की आयु सिर्फ १५ साल की थी। फुर्सत मिलने पर वह बिजली के प्रयोग सीखता रहता था। अपनी आमदनी से वह जितने पैसे बचाता उसके पुराने रद्दी यन्त्र खरीद लेता और उन्हें ठीक-ठाक करके काम बना लेता था।

दिन के समय वह स्टेशनों पर तार-घरों का काम देखा करता था। जो लोग तार का काम करते थे। उनसे इस सम्बन्ध में बात-चीत किया करता था। इससे थोड़े दिनों में उसे तार के सम्बन्ध की बहुत सी बातों का ज्ञान हो गया। वह बहुधा तार के यन्त्रों के सम्बन्ध में कर्मचारियों से बात-चीत किया करता था।

धीरे-धीरे उसका ज्ञान बढ़ता ही गया और फिर उसे एक स्टेशन मास्टर की कृपा से तार विभाग में काम करने का अवसर भी मिल गया। और उसने भी बड़े परिश्रम और अध्यवसाय से बिजली और तार के सम्बन्ध में बहुत सी बातों का ज्ञान प्राप्त कर लिया।

एक बार ऐसा हुआ कि उसके गाँव के पास की नदी में जाड़े की ऋतु में बर्फ जम गई, पर गर्मी आने पर जब बर्फ पिघली तो उसके बोझ से तार के दो खम्भे टूट गये। जिससे तार का आना-जाना ही रुक गया। नदी किनारे बहुत लोगों की भीड़ जमा हो गई। किसी की समझ में न आया कि वह क्या करे। इसी भीड़ में एडीसन भी था। सामने एक एञ्जिन खड़ा था, एडीसन लपक कर उस पर चढ़ गया, और उसकी सीटी इस तरह बजानी शुरू की कि उसमें से तार के साँकेतिक शब्द निकलने लगे। इन स्वर-

संकेतों की मदद से वह बार-बार सन्देश भेजने लगा। दूसरी ओर वालों ने स्वर समझ कर संकेत से उत्तर देना आरम्भ कर दिया। इससे एडीसन की बड़ी तारीफ़ हुई और अब वह एक कुशल तार मास्टर हो गया।

परन्तु उसकी आकाँक्षायें तो बहुत ऊँची थीं। वह दिन-रात बिजली की विद्या को सीखने में लगा रहता था और नित्य नये-नये प्रयोग करता रहता था। एक दिन वह एक सस्ती पुरानी बिजली की विद्या की पुस्तक खरीद लाया और सारी रात उसे पढ़ता रहा।

अब उसने प्रचलित तार प्रणाली को सुधारने के काममें हाथ डाला, उसने उसे तीव्रगामी बनाने की युक्ति निकाली। उसके दोष और त्रुटियां दूर कीं, और तार के खर्च को भी कम किया जिससे सर्व साधारण को बड़ी सुविधा हुई। उस समय तक एक तार पर एक ही सन्देश भेजाजा सकता था, पर अब एक तार पर ६ सन्देश तक भेजे जाने लगे।

फिर तो उसने एक-से-एक बढ़ कर आविष्कार किये। सभ्य संसार में जो एक-से-एक बढ़ कर यन्त्र हैं उनमें बहुत से एडीसन के अविष्कृत हैं। ग्रामोफ़ोन भी उसी ने निकाला, और टेलीफ़ोन भी उसी ने बनाया, बाईस्कोप की सृष्टि भी उसी ने की। बिजली की ट्रेन, मोटरें सब उसीका आविष्कार हैं वह विश्वविख्यात और निरहंकार पुरुष हो गया है। उसने अतुल धन और बहु प्रतिष्ठा प्राप्त की थी।

: १३ :

बुकर टी० वाशिंगटन

सन् १८५८ के एक प्रातःकाल को लट्ठों और बल्लियों के बने एक टूटे-फूटे छप्पर में एक बालक जन्मा—उसकी माँ जर-खरीद ग़ुलाम थी और उसे प्रसव के लिये सिर्फ़ २४ घन्टे की छुट्टी मिली थी। वह जाति की हबशी थी। जिन्हें स्वतन्त्र करने क लिये ही अमेरीका में बड़ा-भारी युद्ध हो चुका था, परन्तु फिर भी हबशी ग़ुलाम पशुओं से बदतर समझे जाते थे। इस बालक का नाम बुकर टी० वाशिंगटन रखा गया—जिसने अपनी जाति को उन्नत करने में अपना जीवन व्यतीत किया।

उसकी माँ एक अमीर अमेरीकन की खरीदी हुई दासी थी। और अपने मालिक के ग़ुलामों के लिये रोटियाँ बनाया करती थी, उसे रहने के लिये रसोई घर के पास ही एक झोंपड़ा देदिया गया था। जिसमें एक पुराने चीथड़ों की गुदड़ीमें उसने बालक को जन्म दिया था। वह झोंपड़ी ऐसी थी कि सर्दियों में ठंडी वायु के तीर से झोंके उसे सताते थे। और गर्मी में लुओं के झोंके उसे झुलसाया करते थे।

१२ वर्ष की उम्र तक उस बालक को टोपी नसीब नहीं हुई। एक दिन उसने अपने मालिक के बच्चों को पुए खाते देख मन में सोचा कि जिस दिन मुझे पूआ खाने को मिल जायगा। उस दिन से बढ़कर कोई दिन मेरे लिये सुखकर न होगा।

बड़े होने पर उसे सेवों में काम करने और बाग़ में झाड़ू लगाने का काम दिया ||गया जब वह कुछ और बड़ा हुआ तो मालिकों के खाना खाने के समय मक्खियाँ उड़ानेका काम उसे दिया गया। वह कभी सोच भी न सकता था कि उसे लिखने-पढ़ने का भी अवसर मिलेगा। पर जब वह मालिकों के बच्चों की किताबें लेकर स्कूल तक पहुँचाने जाने लगा तो स्कूल को देख उसके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि स्कूल में पढ़ने से अधिक आनन्द-दायक स्वर्ग भी नहीं हो सकता।

इन्हीं दिनों में गुलाम आज़ाद हो गये। आज़ाद होने पर बुकर अपनी माँ के साथ अपने सौतेले बाप के पास रहने और नमक की खानोंमें काम करने लगा। प्रातः आठ बजेसे लेकर रातके आठबजे तक उसे वहाँ काम करना पड़ताथा। पढ़ने की उसकी बड़ी इच्छा थी। पर समय नथा। वह स्कूलमें पढ़ने को लड़कों को जाते देख कुढ़ा करता था। अन्त में बड़ी कोशिश से उसे रात को किसी रात्रि पाठशाला में पढ़ने की आज्ञा मिल गई। पर इस पढ़ाई से उसकी तृप्ति न होती थी। अन्त में उसके बहुत कहने-सुनने से दिन के स्कूल में पढ़ने की आज्ञा इस शर्त पर मिल गई कि वह स्कूल से समय बचा कर चार घन्टे ज़रूर कारखाने में काम करे। पर थोड़े दिन बाद ही उसके लालची सौतेले बाप ने उसे दिन भर काम में जोत दिया। बाद में उसे कोयले की खानों में काम करना पड़ा इससे वह बहुत असंतुष्ट था। उससे किसी ने कहा—कि हबशियों के लिये हेम्पटन में अच्छा स्कूल खुला है। परन्तु वहाँ वह जाय कैसे?

फिर भी वह रात-दिन इसी उधेड़-बुन में लगा रहा—इसी बीच उसे पता लगा कि किसी गोरी स्त्री को एक नौकर की जरूरत है। वह बड़ी बदमिज़ाज थी कोई नौकर उसके यहां टिकता ही न था, पर बुकर ने उसके यहाँ नौकरी कर ली। और अपनी सेवा और तत्परता से उसे इतना प्रसन्न कर लिया कि वह बुकर को अपने घर का आदमी समझने लगी। इस स्त्री के यहां रहकर उसने बहुत कुछ सीखा—और डेढ़ वर्ष नौकरी करके कुछ रुपया इकट्ठा करके उसने हेम्पटन चलने की ठानी।

माल्डेन से हेम्पटन ५००सौ मील से भी अधिक था, पर वह हिम्मत बांध कर चल ही दिया—रास्ते मे उसे बड़े-बड़े कष्ट सहने पड़े। कहीं-कहीं उसे रात जंगल में दरख्तों पर चढ़कर काटनी पड़ी, कहीं सड़कों और नालियों में सोकर सर्दी की भयंकर रातें कटती ही न थीं। अन्तमें वह रिचमण्ड पहुँच गया। अब उसके पास एक पैसा भी न था सोने की जगह कहां मिलती—वह एक पुल के नीचे सूखे नाले में सो रहा। प्रातःकाल उसने देखा—सामने एक जहाज़ लोहा उतार रहा है। वह भी लोहा उतारने लगा—तब कहीं चौथे दिन शाम को उसे भोजन मिला। कुछ दिन उसने वहाँ मजदूरी की, और कुछ रुपया जमा करके वह फिर आगे चला।

रास्ते में बड़े-बड़े कष्ट झेलता हुआ यह विद्या-प्रेमी बालक अन्त में स्कूलके द्वार पर पहुँचा। पर अध्यापिकाने इसे बहुत मैला-कुचैला देखकर स्कूल में दाखिल करने से इन्कार कर दिया—पर जब बुकर ने बहुत विनती की तो अध्यापिका ने उसे कमरे में झाड़ लगाने की

आज्ञा दी। बुकरने तीनबार झाड़ू दी फिर झाड़नसे सब चीजें अच्छी तरह झाड़ीं। अध्यापिका ने आकर कमरा देखा। रूमाल निकाल कर हर एक चीज़ को रगड़-रगड़ कर देखा—पर सब साफ़ चम-चमात हुआ था, वह प्रसन्न हो गई और उसने बुकर को स्कूल में दाखिल कर लिया। दूसरे विद्यार्थियोंके कमरेमें झाड़ देना—बिस्तर ठीक करना, भोजन बनाने में मदद करना यह काम उसे मिले। बदले में उसे भोजन और शिक्षा मिलने लगी। इस प्रकार तीन वर्ष तक वह काम करके पढ़ता रहा, घर पर वह छुट्टियों में भी न जाता। क्योंकि रुपया पास न था। छुट्टियों में महनत मजदूरी कर के वह कपड़े-जूते बनवा लेता। तीन वर्ष में उसने स्कूल की सारी पढ़ाई समाप्त कर ली।

अब वह घर लौटा, और अपने जाति-भाइयों के लिये एक स्कूल उसने खोला। और विद्यार्थियों को तैयार करके हेम्पटन के स्कूल में दाखिल करवाया। कुछ दिन बाद वह अमेरिका की राजधानी वाशिंगटन में ट्रनिंग के लिये गया। आठ महीने बाद जब वह लौटा तो उसे हेम्पटन स्कूल में पढ़ाने तथा बोर्डिंग हाउसके प्रबन्ध के लिये बुला लिया गया। क्योंकि जिन लड़कों को पढ़ा कर उसने स्कूल में भेजा था—उनसे अध्यापक बहुत सन्तुष्ट थे।

हेम्पटन में बुकर ने ऐसी अच्छी तरह काम किया कि अल्बा-निया में जब वहाँकी सरकारने हबशियों के लिये नया स्कूल खोलने की योजना की तब बुकर ही उसके सँचालक पद पर नियत किया गया। यह स्कूल टस्केजी गांव में था। सरकार ने सिर्फ छः हजार

रुपया सालाना सहायता देनेके अतिरिक्त स्कूल से कोई सम्बन्ध न रखा। पर बुकर ने उस स्कूल को एक झोंपड़ी से बढ़ाकर एक विशाल कालेज बना दिया।

शुरू में एक टूटे गिरजे में उसने लड़कों को पढ़ाना शुरू किया जब मेह बरसता तो उसे छाता लगाना पड़ता। क्योंकि सारी छत चूने लग जाती। विद्यार्थी पढ़ते जाते और भीगते जाते थे। पर १८ वर्ष के सख्त परिश्रम से बुकर ने उसकी भव्य इमारत बनवा ली। और वह ऐसा प्रसिद्ध कालिज हो गया कि एक बार अमेरिका के प्रेसीडेण्ट भी उसे देखने आये। और बुकर टी० वाशिंगटन की भूर-भूर प्रशंसा की।

अपने जीवन में आगे चलकर यह बालक बहुत प्रसिद्ध हो गया। सभी बड़ी-बड़ी सभाओं में उन्हें बुलाया जाने लगा—विश्व विद्यालयों ने उसे आनरेरी उपाधियाँ देकर अपने को कृतार्थ समझा। अमेरिका के प्रेसीडेण्ट ने उनको अपने साथ भोजन करने को राज-भवन में बुलवाया, और जब वह इंगलैंड गया था तो महारानी विक्टोरिया ने भी अपने साथ चाय पीने के लिये उसे बुलाया था।

: १४ :

उत्तङ्क

प्राचीन काल में अपोद पुत्र धौम्यके शिष्य वेद बड़े भारी ऋषि प्रसिद्ध हुए। उत्तङ्क उन्हीं का शिष्य था। उसने भली-भाँति गुरु सेवा करके समस्त विद्याओं का अध्ययन किया। जब वह समस्त वेद-शास्त्रों में पारंगत हो गया, तब गुरु जी ने उसे घर जाने की आज्ञा दी। इस पर उसने हाथ जोड़ कर गुरु जी से पूछा—महाराज, मुझ से कुछ गुरु दक्षिणा लीजिये। गुरुजी ने कहा, पुत्र हम तो तेरी सेवा ही से प्रसन्न और सन्तुष्ट हैं, परन्तु तेरी यदि यही इच्छा है तो जाकर गुरु-माता से कह—उन्हें जो कुछ इच्छा हो, उसकी पूर्ति कर—इसी से हम सन्तुष्ट हो जायेंगे।

इस पर उत्तङ्क ने गुरु-पत्नी के पास जा हाथ जोड़ कहा—माता गुरुजी ने मुझे स्नातक बनाकर घर जाने की आज्ञा दी है। और कहा है कि गुरु दक्षिणा में जो माता चाहें वही लाकर उन्हें सन्तुष्ट करो। इससे मैं सेवा में आया हूँ, आप कहिए कि मैं आपकी क्या इच्छा पूरी करूँ ?

गुरु-पत्नी ने उत्तङ्क की बात सुनकर कहा—तेरी यदि यही इच्छा है तो मुझे वे कुण्डल लादे जो पौष्य राजा की रानी पहनती है, आज से चौथे दिन त्यौहार है उस दिन वही कुण्डल पहन कर मैं ब्राह्मणों को अन्न परोसना चाहती हूँ—जा यह काम कर—इस में भूल हुई तो तेरा अनिष्ट होगा।

गुरु-माता की यह आज्ञा पाते ही उत्तङ्क चल दिया। रास्ते में उसे एक बड़ा भारी बैल मिला, उस पर एक दीर्घकाय आदमी बैठा था—उस ने उत्तङ्क से कहा—अरे, उत्तङ्क! तू इस बैल का गोबर खा ले।

उत्तङ्क ने कहा—वाह, भला मैं ब्राह्मण का बालक बैल का गोबर क्यों खाऊँ?

इस पर बैल के सवार ने कहा—अरे विचार न कर, तेरे गुरु ने भी इसका गोबर खाया है, जल्दी कर।

उत्तङ्क ने कहा—गुरुजी ने खाया है तो अच्छी बात है, मैं भी खाऊँगा। यह कहकर उसने जल्दी-जल्दी बैल का गोबर खा लिया और भागते-भागते कुल्ला कर चल दिया।

जब वह राजा पौष्य की राज सभा में पहुँचा तो राजा ने सत्कार करके कहा—कहिए ऋषि कुमार, मैं तुम्हारी कौनसी इच्छा को पूर्ण करूँ?

उत्तङ्क ने कहा—मैं गुरु-दक्षिणा के लिये आपकी रानी के कुण्डलों की याचना करता हूँ, वे आप मुझे दीजिए।

राजा ने कहा—आप रनवास में चले जाइये वहाँ आप रानी ही से कुण्डल माँग लीजिए।

परन्तु जब राज-महल में जाकर उत्तङ्क ने रानी को नहीं देखा तो उसने लौटकर राजा से कहा—वहाँ तो रानी है ही नहीं, आप ने मुझ से झूठ क्यों बोला।

राजा ने कहा—मैंने झूठ नहीं बोला, आप उच्छिष्ट मुख और

अपवित्र हैं इससे पतिव्रता रानी आपको नहीं दीख पाई है। पतिव्रता स्त्री को अपवित्र पुरुष नहीं देख पाता है।

उत्तङ्क ने कहा—ठीक है, मैंने भागते-भागते आचमन किया था। यह कहकर उसने पूर्वभिमुख बठ—हाथ, पैर, मुंह धोए। और तीन बार आचमन किया। इस प्रकार पवित्र होकर वह जब रनवास में पहुँचा तो अब रानी उसे दीख पड़ी।

रानी ने आदर पूर्वक उसे उच्चासन पर बैठा कर कहा—कहो ऋषिकुमार, तुम्हारी मैं क्या इच्छा पूर्ण कर सकती हूँ।

ऋषिकुमार ने कहा—मुझे गुरु-दक्षिणा के लिये आपके कुण्डल चाहियें।

रानी ने प्रसन्नता से कुण्डल उतार कर दे दिये। और कहा—सत्पात्र को दान देना ही उचित है। परन्तु तुम इन कुण्डलों को सावधानी से रखना क्योंकि नागराज तक्षक हमेशा इनकी ताक में रहता है।

उत्तङ्क ने कहा—आप चिन्ता न करें। मैं बहुत सावधानी से इनको लेजाऊंगा। इतना कह, कुण्डल ले वह राजाके पास आया। और कहा—राजन् मैं बहुत प्रसन्न हूँ मुझे कुण्डल मिल गये।

राजा ने कहा—यह तो बहुत ही प्रसन्न की बात है। परन्तु आप जैसे पवित्र ब्रह्मचारी कठिनाई से मिलते हैं। मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप भोजन करके जायँ।

ऋषि कुमार ने कहा—परन्तु मुझे बहुत जल्दी है, यदि भोजन तैयार हो तो मैं भोजन कर सकता हूँ।

राजा ने कहा--भोजन तैयार है। जब उत्तङ्क आसन पर बैठ गये और भोजन परोसा गया तो उसने देखा कि भोजन ठँडा है और उसमें एक बाल भी पड़ा है। इस पर क्रुद्ध हो उत्तङ्कने कहा-तुमने अपवित्र भोजन परोसा है, इससे तुम अन्धे हो जाओगे।

राजा ने कहा--तुम तो अच्छे अन्न को दूषित बताते हो इससे तुम्हें सन्तान नहीं होगी।

उत्तङ्क ने कहा--वाह, आप दूषित अन्न का दान करके भी शाप देते हैं। आप अपना अन्न देखिए तो सही।

राजा ने देखा तो वह ठण्डा था, और उसमें बाल भी था। उसने कहा--अज्ञान से ऐसा हुआ है, इसे जिस स्त्री ने बनाया है उसके बाल खुले थे। इससे आप मुझ निरपराध को शाप न दें। मैं अन्धा न होऊं।

ऋषि कुमार ने कहा--मेरा बचन कभी मिथ्या नहीं होता--पर तुम अन्धे से फिर आँख वाले हो जाओगे। और मुझे भी जो तुमने शाप दिया है वह भी सत्य न हो।

राजा ने कहा--मेरा शाप तो मिथ्या हो ही नहीं सकता। ब्राह्मण का हृदय कोमल और वाणी कठोर होती है। पर क्षत्रिय की वाणी कोमल और हृदय कठोर होता है, इसलिये मैं शाप नहीं लौटा सकता-- आप जाइये।

ऋषि कुमारने कहा--मैंने दूषित अन्नको ही दूषित बताया है। अदूषित को नहीं, इससे तुम्हारा शाप मुझे नहीं लगेगा। यह कह वह कुण्डल लेकर चल दिया।

मार्ग में उसने देखा— एक नंगा साधू इसके पीछे लगा है। वह कभी दीख पड़ता है और कभी छिप जाता है। आगे चलकर नदी किनारे वह कुण्डलों को भूमि पर रखकर स्नान सन्ध्या करने बैठ गया। अवसर पा वह नंगा साधू कुण्डल उठाकर भाग गया।

सन्ध्या बन्दन से निवृत होकर उत्तङ्क उसके पीछे भागा। भागते-भागते उसने साधू को पकड़ लिया—पकड़ते ही वह अपना वह रूप त्याग सर्प हो गया। और फुफकार कर उसने कहा—मैं तक्षक हूँ। इतना कह वह भूमि में घुस गया। भूमि में घुस कर तक्षक नाग-लोक में जा पहुँचा। उत्तङ्क भी अपनी लाठी से उस बिल को खोदने लगा। परन्तु खोद नहीं सका। थक कर दुखी हो बैठा रहा।

इन्द्र ने जब उसे दुखी देखा तो अपने बज्र को भेजा, बज्रने उसकी लाठी में प्रविष्ट होकर आनन-फानन बिलको खोद डाला— उत्तङ्क उस बिल में घुस गया। और नाग लोक में पहुँच गया।

नाग लोक में पहुँच कर उसने बड़े-बड़े महल, बाग और नगर देखे। नाग लोक की शोभा देखकर वह 'आश्चर्य चकित रह गया। उसने देखा—नागोंका राजा ऐरावत है, जो मेघों की वृष्टि के समान बाण वर्षा करता है। सुन्दर नाग गण भाँति-भाँति के कुण्डल पहिने घूम रहे हैं। उसने कुण्डलों की प्राप्ति के लिये बहुत चेष्टा की, नागों की तथा तक्षक की स्तुति की, पर उसे कुण्डल नहीं मिले। तब उसे बड़ी चिन्ता हुई। अचानक उसने क्या देखा, कि शौभन बेना (कपड़े बुनने के यन्त्र) पर दो स्त्रियाँ कपड़े बुन रही हैं। उसमें काले और सफ़ेद तार लगे हैं। ६ कुमार बारह पंखड़ी वाले

चरखे को चला रहे हैं। पास ही एक सुन्दर घोड़ा और एक पुरुष भी खड़ा है। उसने उनसब की भी स्तुति की। परन्तु उसका काम सिद्ध नहीं हुआ। कुण्डल उसे नहीं मिले।

विवश हो उसने देवराज इन्द्र का स्मरण किया। इस पर घोड़े के पास खड़ा हुआ वह पुरुष बोला—अरे, आयुष्मान्! तू क्या चाहता है? कह।

उत्तङ्क ने कहा—मुझे कुण्डल मिल जायँ।

उस पुरुष ने कहा—इस घोड़े की गुदा में फूँक मार।

उत्तङ्क ने ऐसा ही किया। फूँक मारते ही उसके सब स्रोतों से धुआँ और आग की लपटें निकलने लगीं। उस धुएं से नागलोक भर गया, तब घबराया हुआ तक्षक कुण्डल लेकर आया और उत्तङ्क से कहा—आप अपने कुण्डल ले जाइये। और इस ज्वाला से नागलोक को बचाइये। उत्तङ्क कुण्डल पाकर बहुत प्रसन्न हुआ।

अब वह इस चिन्ता में पड़ा कि घर जल्दी कैसे पहुँचे, क्योंकि उसी दिन वह पर्व का दिन था। उस पुरुष ने उत्तङ्क के मन की बात ताड़ कर कहा—तुम इसी घोड़े पर सवार हो जाओ यह तुम्हें अभी गुरुकुल में पहुँचा देगा।

बस उतङ्क तुरन्त घोड़े पर सवार हो गया, और क्षण भर में गुरुकुल में जा पहुँचा।

गुरुआनीजी स्नान कर चुकी थीं, और उन्हें देर हो रही थी। वे क्रुद्ध होकर उतङ्क को शाप देने वाली थीं कि उतङ्क आ पहुँचा, और कुण्डल गुरुआनीजी के आगे धर हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया।

इस पर प्रसन्न होकर गुरुआनी ने उसे आशीर्वाद दिया। गुरुजी भी बहुत प्रसन्न हुये और देर का कारण पूछा।

उत्तङ्क ने सब हाल व्यौरे वार कहा। और पूछा कि महाराज, मार्ग में जो बैल मिला वह कौन था? और उसका पुरुष कौन था? उसने मुझे उसका गोबर क्यों खिलाया था? और नागलोक में दो स्त्रियां कपड़ा बुन रही थीं वे कौन थीं? उनके वे काले और सफेद तन्तु क्या थे? उस चरखे में बारह आरे क्या थे? और जो ६ कुमार उसे चला रहे थे वे कौन थे? वह विशाल घोड़ा और वह पुरुष कौन था?

गुरुजी ने कहा—मार्ग में जो बैल तैंने देखा वह ऐरावत नागराज था, और जो इस पर पुरुष सवार था वह इन्द्र था, तूने जो उसका गोबर खाया वह अमृत था। इसीसे तू नागलोक में मरा नहीं। वे दोनों स्त्रियां धाता और विधाता, अर्थात् चिति और माया थीं। काले और सफेद जो तन्तु थे वे रात और दिन थे। जो बारह आरों का चक्र था जिसे ६ कुमार चला रहे थे. वे ६ ऋतु और चक्र सम्वतसर था। जो पुरुष घोड़े के पास था वह इन्द्र था और वह घोड़ा अग्नि था।

इन्द्र मेरा मित्र है, इसीसे उसने तेरी सहायता की। बिना उसकी सहायता के तू कुण्डल प्राप्त नहीं कर सकता था। अब तू जाकर आनंदसे रह। तेरा कल्याण हो, मैं तुझे आशीर्वाद देता हूँ।

यह सुनकर उत्तङ्क ने गुरु को प्रणाम किया और चला गया।

: १५ :

चन्द्रहास

बहुत दिन की बात है। केरल देश म मेधावी नामक एक धर्मात्मा राजा का राज्य था। उनका एक इकलौता बेटा था उसका नाम चन्द्रहास था। जब चन्द्रहास बहुत ही छोटा था कि उसके पिता केरल नरेश एक युद्ध में मार डाले गये। और उसकी माता अपने पति के साथ सती होगई। राज्य पर शत्रुओं का अधिकार होगया। इस मुसीबत मे चन्द्रहास की धाय कुमार को चुपके से निकाल कर ले भागी। और कुन्तलपुर में रहने लगी। उसने तीन वर्ष तक मिहनत-मजदूरी करके कुमार का लालन-पालन किया। इसके बाद वह भी एक दिन मर गई।

चन्द्रहास निपट अनाथ और असहाय होगया। पास-पड़ोस की स्त्री-पुरुष अब उस अनाथ बालक को खाने-पीने को दे देते। यह किसी को पता न था कि यह केरल का युवराज है। इसी भांति उसे कुन्तलपुर में रहते-रहते कुछ काल बीत गया।

कुन्तलपुर के राजा की पुत्री बड़ी सुन्दरी थी। उसका नाम चम्पक मालिनी था। राजा के गुरु गालब ऋषि थे उनके सत्संग से राजाकी मति धर्म में रहती थी। और वे सदा पूजा-पाठ में लगे रहते थे, राज-काज मन्त्री के हाथ में था, मन्त्री का नाम धृष्टबुद्धि था, वही कुन्तलपुर का कर्ता-धर्ता था। उसने जोड़-बटोरकर बड़ी भारी सम्पत्ति जमा करली थी उसके दो पुत्र और एक पुत्री थी। पुत्रोंका

नाम मदन और अमल था, पुत्री का नाम विषया था। विषया परम सुन्दरी थी। मदन और अमल दोनों राज-काज में पिता की पूरी मदद करते थे—मदन धर्मात्मा था पर धृष्ट बुद्धि तो दिन-रात राज नीतिके दाव-पेंच में ही लगा रहता था। संयोग वश मदन की मित्रता चन्द्रहास से हो गई और चन्द्रहास मदन के पास आने-जाने लगा।

जब कुछ दिन इस प्रकार बीत चले तो किसी तरह मन्त्री को पता लग गया कि यह केरल का राजकुमार है मन्त्री धृष्टबुद्धि का केरल नरेश की मृत्यु में बहुत कुछ हाथ था वह चन्द्रहास को मार डालने का कोई अवसर ताकने लगा। एक दिन अवसर पाकर वह चन्द्रहास को महल के एकान्त स्थान में ले गया और वहाँ बधिक को बुलाकर चन्द्रहास को उसके सुपर्द कर दिया। और जल्लाद से कहा—आज ही काम बनाकर निशानी लाओ और पूरा इनाम पाओ। जल्लाद चन्द्रहास को लेकर चुप-चाप वहाँ से चल दिया।

जब चन्द्रहास को पता चला कि यह मुझे मार डालने के लिये लाया है। तो उसने उससे कहा—कि भाई, मुझ अनाथ बालक को मार कर तुझे क्या मिलेगा। जो थोड़ा धन मिल भी गया उस से तुझे क्या सुख मिलेगा। जल्लाद को उस पर दया आ गई। चन्द्रहास के एक पैर में छै अंगुलियाँ थीं। बस उसने छटी अंगुली काट ली और चन्द्रहास को वहीं छोड़ मन्त्री के पास आ गया। और छटी अंगली दिखा दी। उसे देख कर धृष्ट बुद्धि प्रसन्न और सन्तुष्ट हो गया।

बालक चन्द्रहास उँगली कटने के दर्द से कराहता हुआ वहीं जंगल में पड़ा रहा। दैवयोग से वहाँ चन्दनपुर का राजा शिकार खेलते हुए आ निकले—राजा के कोई पुत्र न था, उस ने बालक चन्द्रहास को अपनी गोदी में उठा लिया—और उससे इस दुर्दशा का कारण पूछा तो चन्द्रहास ने सब हाल बता दिया—परन्तु वह अपने माता-पिताके सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता था इससे कुछ न बता सका। फिर भी उसके शरीर में राज चिह्न देख राजाने समझ लिया कि यह अनाथ किसी बड़े वंश का कुमार है। और वह उसे अपनी राजधानी में ले आया और पुत्र की भाँति पालने लगा।

चन्द्रहास यहां रहकर बड़े आनन्द के साथ राजकुमार की भाँति रहने लगा—कुछ दिन बाद राजा ने उसे युवराज घोषित कर दिया। वह बड़ा मेधावी था—इस लिये शीघ्र ही सब विद्याओं में निपुण हो गया। और अपने सद्गुणों तथा विनम्र स्वभाव से सारे राज-परिवार का और प्रजा का प्रिय बन गया। युवा होने पर वह बड़ा बांका वीर निकला। उसने आस-पास के सब शत्रुओं को भी परास्त कर डाला।

चन्दन पुर की रियासत कुन्तलपुर के आधीन थी और वहाँ का राजा १० हजार मोहर सालाना कर दिया करता था। पर इस बार चन्द्रहास ने १० हजार के अलावा और बहुत सा धन-माल कुन्तलपुर को भेजा। धीरे-धीरे चन्दनपुर के एश्वर्य वृद्धि का समाचार कुन्तलपुर पहुँचा तो धृष्टबुद्धि राज्य की सब व्यवस्था देखने के लिये बहाना कर के चन्दनपुर पहुँचा।

राजा और कुमार ने मन्त्री का धूमधाम से स्वागत किया। पर धृष्टबुद्धि ने चन्द्रहास को तुरन्त पहचान लिया, और उसे देख कर वह जलकर खाक हो गया। उसने चन्द्रहास के मरवा डालने की एक युक्ति निकाली और एक पत्र अपने पुत्र मदन को लिखा और उसे चन्द्रहास को देकर कहा—यह पत्र बहुत महत्वपूर्ण है, इससे दोनों राज्यों की भलाई होगी। अतः तुम स्वयं जाकर मेरे पुत्र मदन को यह पत्र देना——खबरदार, पत्र रास्ते में खुलने न पाये और न किसी दूसरे के हाथ पड़ने पाये।

मन्त्री की आज्ञा होने पर चन्द्रहास तुरन्त घोड़े पर सवार हो चल दिया। कुन्तलपुर वहाँ से २४ कोस था। पहुँचते-पहुँचते दिन ढल गया। जब नगर के निकट पहुँचा, तब सोचा, थोड़ा विश्राम करलूँ, तो नगर में चलूँ। यह सोचकर वह एक सुन्दर बाग में घुस गया। यह बाग़ राजा का था। वहाँ उसने स्वयं हाथ मुँह धोकर जल पिया, घोड़े को भी पिलाया। फिर रास्ते की थकान मिटाने घोड़े को एक ओर बाँध वृक्ष की छाया में लेट गया। थका तो था ही, तुरन्त नींद आगई, और वह मीठी नींद सो गया।

दैवयोग से उसी समय मन्त्री-पुत्री विषया सखियों सहित वहाँ घूमने आई। सखियाँ इधर-उधर रह गईं, और विषया उनसे भटक कर वहाँ आ पहुँची, जहाँ कुमार चन्द्रहास सो रहा था। उस सुन्दर कुमार को सोता देख वह मोहित हो गई। उसने देखा कि एक पत्र उसकी जेब में से चमक रहा है। कौतूहल वश उस पर उसने मदन का पता तथा पिता के हस्ताक्षर देख——पत्र धीरेसे

निकाल लिया और खोल कर पढ़ा--पत्र में लिखा था कि 'इसे तुरन्त विष दे देना-कुलशील का विचार न करना।' पत्र पढ़ विषया को बड़ी चिन्ता हुई। उसने विप की जगह विषया बना दिया और पत्र उसी भाँति आम के गोंद से बन्द कर वहीं रख दिया और चल कर सखियों में मिल गई। कुछ देर में कुमार जागकर चल खड़े हुये। नगर में जाकर उसने पत्र मदन को दिया। पत्र पढ़कर और पुराने मित्र को पाकर मदन बहुत खुश हुआ। और उसी क्षण गोधूलि लग्न में विषया का विवाह चन्द्रहास से कर दिया। कन्यादान के समय स्वयं कुन्तलपुर नरेश पधारे। वे भी चन्द्रहास पर मोहित हो गये, उन्होने सोचा पुत्री चम्पक मालिनी के लिये इससे उत्तम वर और कौन मिलेगा, इसी को राजकुमारी ब्याह कर राज्य भी इसे ही दे देना चाहिये।

दो चार दिन बाद मन्त्री ने लौट कर देखा कि उसका सोचा हुआ सब चौपट हो गया है तो वह अत्यन्त क्षुब्ध हुआ, पर मन का कुभाव किसी पर प्रकट नहीं किया। उसने निश्चय किया कि कन्या चाहे विधवा हो जाय पर इस शत्रु को अवश्य मारना होगा। उसने जल्लाद को बुला कर कहा--देखो आज सन्ध्या के बाद नगर के बाहर चामुण्डा के मन्दिर में जो कोई जाय, उस का सिर काट लेना। जल्लाद ने जो आज्ञा कह कर अपनी राह ली।

सन्ध्या के समय उसने चन्द्रहास से हँसकर कहा--चामुण्डा हमारी कुल देवी है, इससे आज सन्ध्या के बाद वहाँ जाकर तुम उसका पूजन कर आना।

सरल कुमार ने स्वसुर की आज्ञा का पालन किया, और पूजन सामग्री लेकर चामुण्डा की मूर्ति पूजने को जाने की तैयारी करने लगा।

वह जाने ही वाला था कि—मदनने आकर कहा—तुम्हें अभी महाराज बुला रहे हैं। महल में तुम्हें अभी चलना होगा।

चन्द्रहास ने कहा--यह तो बड़ी मुश्किल है। मुझे तो अभी चामुण्डा की पूजा करने जाना है।

मदन ने कहा—चामुण्डा की पूजा मैं कर आता हूँ, तुम महाराज की सेवा में जाओ।

यह कह कर चन्द्रहास को तो मदन ने राजमहल में भेज दिया और स्वयं चामुण्डा के मन्दिर में जा पहुँचा। वहाँ घातक ने उसका सिर काट लिया।

इधर राजा ने उसी रात चन्द्रहास को अपनी पुत्री चम्पक-मालिनी व्याह दी और उससे कहा—यह राजपाट भी तुम्हीं संभालो हम तो अब बन में जाकर तपस्या करेंगे।

प्रात काल धृष्टिबुद्धि ने जब पुत्र की मृत्यु का और चन्द्रहास के राजा होने का हाल सुना, तो वह हाय करके रह गया, और उसने पुत्र की लाश पर जाकर तलवार से आत्म हत्या करली। इस प्रकार चन्द्रहास उनकी भी सम्पत्ति का स्वामी बना और आनन्द से राज्य करने लगा।

: १६ :

गरुड़जी

सतयुग की बात है। दक्ष प्रजापति की दो कन्याएँ थीं। एक कद्रू दूसरी वनिता। दोनों अत्यन्त सुन्दरी थीं। प्रजापति ने दोनों का विवाह महात्मा कश्यप से कर दिया। कश्यप ने उनकी सेवा से प्रसन्न होकर कहा—यथेच्छ वर माँगो। कद्रु ने समान तेजस्वी एक हज़ार नाग पुत्र रूप से माँगे, और वनिता ने कहा—मुझे ऐसे पुत्र चाहियें जो तेज, विक्रम और शरीर में कद्रू के पुत्रों से भी बढ़ कर हों। कश्यपने दोनों को यथेच्छ वर देकर सन्तुष्ट किया। वर पाकर दोनों अत्यन्त प्रसन्न हुईं।

समय बीतने पर कद्रू ने एक हज़ार अण्डे दिये, और वनिता ने दो अण्डे दिये। दासियों ने उन अण्डों को गर्म बर्तनों में रख दिया।

५०० वर्ष बाद कद्रुके नाग पुत्र निकले पर वनिताके दो अण्डों से फिर भी बच्चे न निकले। कुछ दिन और प्रतीक्षा कर अधीर होकर वनिता ने एक अण्डा तोड़ डाला। उसने देखा उसमें उसका पुत्र है, वह आधा तो पक गया और आधा कच्चा है। उसने क्रोध में भरकर अपनी माता को श्राप दिया कि तूने पुत्र लोभ से मेरे साथ ऐसा किया, इससे तू ५०० वर्ष तक कद्रु की दासी होकर रहेगी। परन्तु जो तू इस दूसरे अण्डे को इस तरह तोड़ कर अङ्ग भङ्ग न करेगी। तो इससे जो पुत्र होगा वह तुझे श्रापसे छुड़ावेगा

इसलिए तू धीरता से उस की प्रतीक्षा कर। इतना कह कर वह आकाश में उड़ गया।

५०० वर्ष और प्रतीक्षा करने पर गरुड़ उत्पन्न हुआ और वह उत्पन्न होते ही क्षुधा से पीड़ित हो आकाश में घूमने लगा।

इस के बाद एक बार ऐसा हुआ कि उन दोनों बहिनों ने अपने पास से निकलते हुए उच्चैश्रवा अश्व को देखा, उसे देख कर कद्रु ने वनिता से कहा—कहो बहिन, यह घोड़ा किस रंग का है।

वनिता ने कहा—सफेद है।

कद्रु ने कहा—परन्तु पूंछ काली है।

इस पर दोनों ने विवाद किया। और शर्त लगाई कि जिसकी बात सच होगी, दूसरी उसकी ५० वर्ष तक दासी रहेगी। यह तय हुआ कि कल इसे देखकर निर्णय होगा। परन्तु वास्तव में घोड़े की पूँछ काली न थी, पर कद्रु ने कपट जाल रचा और अपने पुत्रों को जो नाग थे, आज्ञा दी कि तुम काले बाल बनकर इसकी दुम से लिपट जाओ। जो मेरी आज्ञा को न मानेगा वह सर्प यज्ञ मे भस्म हो जायगा।

दूसरे दिन प्रात:काल दोनों बहिनें समुद्र पार घोड़े के पास गई और उसके पास पहुँचीं, जब वे घोड़े के पास पहुँचीं तो देखा कि उसकी पूँछ के बाल काले थे। पूँछ के बाल काले देखकर शर्त के अनुसार कद्रु ने वनिता को अपनी दासी बना लिया। इस प्रकार जुए में जीती जाकर वनिता दुखित होकर दासी का काम करने लगी। कुछ दिन बाद दूसरे अण्डे को तोड़कर महा तेजस्वी गरुड़

निकल आये। इनका रूप पक्षी का था। परन्तु इनमें इच्छनुसार रूप, गमन और शक्ति थी। उसकी आँखों में अग्नि के समान तेज था, उसे देखकर देवतागण अग्नि के पास जाकर कहने लगे कि इस पक्षी के तेज से तो हम सब भस्म हो जावेगे। इससे हमारी रक्षा कीजिये।

अग्नि ने कहा—यह महात्मा कश्यप का पुत्र गरुड़ है। और दैत्यों तथा नागों का शत्रु और देवताओं का मित्र है। इससे भय करने की आवश्यकता नहीं है।

एक दिन बनिता अपने पुत्र गरुड़ के पास बैठी थी, उसे चिड़ाने और अपमान करने की गरजसे कद्रू ने बुलाकर कहा—तुम ज़रा मुझे अपनी पीठ पर बैठाकर समुद्र की खाड़ी में जहाँ नागों का निवास है वहाँ ले चलो। लाचार बनिता ने कद्रू को अपनी पीठ पर लादा और माता के कहने से गरुड़ने भी सर्पों को अपनी पीठ पर चढ़ा लिया। इससे गरुड़ को बड़ा क्रोध आया। वह उड़ कर सूर्य के निकट चला गया, जिससे सब नाग जलकर बेहोश होगये, यह देख कद्रु ने इन्द्र की प्रार्थना की जिससे उसने वर्षा करके नागों को सन्तुष्ट किया। इस प्रकार नाग और उनकी माता उस द्वीप में जा पहुँचे, जहाँ नाग रहते थे। सब नाग वहाँ मिल कर जब खूब विहार कर चुके तब गरुड़ से बोले—अब तू हमें किसी और सुन्दर लोक में ले चल जहाँ हम अच्छी तरह विहार करें। यह सुन गरुड़जी बड़ी चिंता में पड़े और अपनो माता से कहने लगे-क्या कारण है जो मुझे सर्पों की आज्ञा पालन करनी पड़ती है।

वनिता ने कहा—पुत्र, मैं सौत से जुए में हारकर उसकी दासी बन गई हूँ। उसने सर्पों से छल कराकर दाव जीत लिया है। यह सुनकर दुखी होकर गरूड़ ने सर्पों से कहा—क्या लेकर तुम हमें दासत्व से छुटकारा दिला सकते हो ? सर्पों ने कहा—कि तुम ला सको तो हम अमृत ला दो, तब तुम्हारा इस दास भावसे छुटकारा हो सकता है।

यह सुनकर गरूड़ ने माता से कहा—मैं अमृत लेने देवलोक जाता हूँ मुझे कुछ खाने को दो। वनिता ने कहा—समुद्र के उस ओर निषाद रहते हैं। उन्हें खाकर तुम अमृत ले आओ। पर खबरदार रहना ब्राह्मण को मत खा जाना। गरूड़ ने कहा—मैं ब्राह्मण को कैसे पहचानूँगा। तब वनिताने कहा—तेरे कण्ठ में पहुँच कर निगलने के समय जो मछली के काँटे की तरह अटक जाय या अङ्गारे के समान कण्ठ को जलाने लगे और पेट में पचे नहीं, उसे तू फौरन ब्राह्मण समझ लेना। जा तेरा कल्याण हो।

यह सुनकर गरूड़ पँख फैलाकर आकाश को उड़ गया। वह बहुत भूखा था सो तुरन्त ही निषादोंके पास जाकर उनका संहार करने लगा। और उसने पेट चीरकर निषादों का भक्षण किया। इन निषादों में एक ब्राह्मण भी अपनी पत्नी समेत गरूड़के मुंह में चला गया। इससे उसका कण्ठ जलने लगा—तो गरूड़ ने कहा—तू निकल आ मैं ब्राह्मण को नहीं मारता। ब्राह्मण अपनी ब्राह्मणी के साथ बाहर निकल आया। इसके बाद गरूड़ फिर आकाश को उड़ गया। मार्गमें गरूड़ने अपने पिता कश्यपजी को देखा। उन्होंने

पूछा—पुत्र ! तुम कहां चले । कैसे हो ? गरुड़ ने सब हाल ब्यौरे वार सुना दिया परन्तु भोजन के विषय म कहा—मेरे भोजन का ठीक-ठाक अभी कुछ नहीं है। अभी तो मैं अमृत लेने देव लोक जाता हूँ। जिससे माता का दासी भाव छुटे । मैंने हजारों निषादों का भक्षण किया परन्तु मेरा पेट नहीं भरा अब आप ही कोई भोजन बताईये जिससे भूख-प्यास मिटाकर मैं अमृत ला सकूँ ।

कश्यप पुत्र की बा त सुनकर बोले—इस तालाबमें यह कछुआ और हाथी परस्पर के द्वेष से युद्ध कर रहे हैं। यह दोनों मूर्ख—सुप्रतीत और विभावसु नामक दोनों भाई हैं जो एक दूसरे के शाप से हाथी और कछुआ बन गये हैं सो तुम इन दोनों का भक्षण कर डालो—यह कछुआ महामेघ के समान तथा हाथी महा पर्वत के समान है। इन्हें भक्षण करके अमृत ले आओ।

बस गरुड़जी ने पिताजी की सलाह सुनकर जो उड़ान उड़ी—तो झट उस तालाब पर आए और एक पँजेमें हाथी को तथा दूसरे में ककुए को पकड़ लिया और उन्हें लेकर अलम्ब तीर्थमें पहुँचा। और रोहिण महा वृक्ष पर बैठकर हाथी और कछुए को खाने लगा। परन्तु उसके बोझ से वृक्ष की वह शाखा टूट गई। उसी शाखा में नीचे मुँह किये बालखिल्य ऋषि तप करने को लटक रहे थे। इन ऋषि को कहीं चोट न लग जाय इस भय से गरुड़ ने दोनों पँजों में हाथी और कछुए को पकड़ते हुए चोंच से वह शाखा पकड़ली और ऋषि को कष्ट न हो इस विचार से धीरे-धीरे उड़ने लगा। वह उन्हें लिये बहुत सी जगहों पर उड़ता फिरा। पर उन्हें उतरने

का कहीं स्थान ही नहीं मिला। अन्त में वह गन्धमादन पर्वत पर पहुँचा वहाँ उसने तप करते हुए अपने पिता को देखा।

कश्यप ऋषि ने जो अपने दुर्दान्त पुत्र को इस प्रकार आते देखा तो कहा—अरे पुत्र, तूने यह क्या दुस्साहस किया। ये बालखिल्य ऋषि किरण पीकर तपस्या करते हैं कहीं शाप से तुझे दग्ध न कर डालें। इसके बाद उन्होंने बालखिल्य ऋषिकी भी बहुत स्तुति की। जिसे सुन वे शाखा को छोड़कर हिमालय पर्वत पर चले गये, तब गरुड़जी कहने लगे कि आप मुझे ऐसी जगह बताइये जहाँ मैं इस शाखा को डालूँ। जहाँ कोई आदमी न हो। कश्यप ने उन्हें एक अगम्य गिरि कन्दरा बता दी। तब गरुड़ हाथी कछुआ और उस शाखा के बोझ को लेकर फिर उड़ चले। वह शाखा इतनी बड़ी थी कि सौ पशुओं के चमड़े से भी नहीं बाँधी जा सकती थी। जब पिता के बताए स्थान पर जाकर उस शाखा को गरुड़ ने छोड़ा तो बड़ा शब्द हुआ। पर्वत काँप गये। तब उस पर्वत की चोटी पर बैठकर गरुड़ ने उस कछुए और हाथी को खाया। तृप्त होकर वह अब अमृत लेने को उड़ा।

जब गरुड़ देवलोक के निकट पहुँचा तो वहाँ बड़े उत्पात होने लगे। इन्हें देख इन्द्रने घबरा कर बृहस्पति से कहा—यह कौन शत्रु हम पर चढ़ा आरहा है। बृहस्पति ने कहा—यह महर्षि कश्यप का पुत्र गरुड़ है जो अमृत लेने आया है अब आप इसमे अमृत की रक्षा नहीं कर सकते। यह सुन इन्द्र ने देवताओं को ललकार कर कहा—खबरदार गरुड़ अमृत न ले जाने पावे।

बृहस्पति ने कहा—गरुड़ महाबली है, देवता उससे युद्ध में जय नहीं पा सकते। फिर भी देवता अमृत को घेर कर बैठ गये। इन्द्र भी वज्र ले अमृत की रक्षा करने बैठ रहे। देवताओं ने बड़े-बड़े हथियार लिये। इतने में ही देवताओं के पास पक्षिराज गरुड़ जा पहुँचे। अब अमृत के लिये घन-घोर युद्ध होने लगा। गरुड़ने देवताओं को चीर-फाड़ कर घायल कर डाला। और युद्ध में गरुड़ के पंखों से इतनी धूल उड़ी कि इन्द्र ने वायु को आज्ञा दी कि तुम धूल की वर्षा को दूर ले जाओ। जब वायु ने धूल को हटा दिया और अंधकार नष्ट हुआ तब देवता फिर गरुड़ पर प्रहार करने लगे। क्रोध में आकर गरुड़ जोर से गर्जने लगे और ऐसे वेग से आक्रमण करने लगे कि देवता घबरा कर भाग निकले। गरुडजी अमृत को लेकर चल दिये। यह देख अग्नि ने हज़ारों मुख से अमृत को ढक लिया। परंतु गरुड़जी ने नदियों की जल धार से वह आग बुझादी।

अन्त में वे अमृत का कलश लेकर चल दिये। आकाश में विष्णु जी से भेंट हुई। उन्होंने कहा—मैं तुम से अत्यन्त प्रसन्न हूं क्योंकि तुमने अमृत स्वयं नहीं पिया, तुम वर माँगो गरुड़ ने कहा—मुझे आप अपनी ध्वजा में स्थान दीजिए और वर दीजिए कि बिना ही अमृत पीये—अजर-अमर रहूँ।

विष्णु ने कहा—तथास्तु। फिर गरुड़ ने कहा—आप भी अब मुझ से वर माँगिये। विष्णु ने हँसकर कहा—अच्छी बात है, तुम मेरे वाहन बनो। गरुड़ ने स्वीकार किया।

इसके बाद गरूड़ आगे उड़े। तब इन्द्र ने क्रोध में आकर उस पर बज्र मारा। बज्र की चोट खाकर गरूड़ने हँसकर कहा--मैं बज्र का और तुम्हारा सम्मान करनेके लिये अपना एक पर गिराये देता हूँ।

यह देख इन्द्रने आश्चर्य करके कहा--हे पक्षिराज, तुम्हारा बल आश्चर्यजनक है। मैं तुमसे मित्रता चाहता हूँ।

गरूड़ ने कहा—अच्छा, मुझे भी आपसे मित्रता स्वीकार है।

इन्द्र ने कहा--यदि अमृत से आपका कोई काम नहीं है तो उसे मुझे लौटा दीजिए। आप नागों को यह अमृत देना चाहते हैं इसे पाकर वे हमें कष्ट देंगे।

गरूड़ ने कहा--मैं तो अपने किसी मतलब से ही अमृत को लिये जा रहा हूँ, पर किसी को पीने न दूँगा। इससे मैं इसे जहाँ रख दूँ वहाँ से तुम उठाकर फौरन भाग आना। इस पर इन्द्र राज़ी होगये। इतना कह गरुड़ अपनी माता के पास आए। और कहा-अरे, नागो! मैं अपने बचन के अनुसार अमृत ले आया हूँ। अब आज से मेरी माता तुम्हारी दासी नहीं है यह अमृत रखा है तुम स्नान मँगलाचरण करके इसका पान करो। यह कहकर उसने वह कलश कुशा पर रख दिया। नाग लोग स्नान आदि को चल दिये। उधर अवसर पा इन्द्र कलश उठा अपने रास्ते लगा। सर्प देखते ही रह गये। और कुशा को चाटने लगे जिससे उनकी जीभ चिर गई।

इस प्रकार गरूड़ ने अपनी माता को दासीपनसे मुक्त किया।

: १७ :

ध्रुव

महाराज मनुके पुत्र राजा उत्तान पाद के दो रानियाँ थीं, बड़ी रानी का नाम सुनीती, और छोटी का सुरुची था। सुनीती के बेटे का नाम ध्रुव और सुरुची के बेटे का नाम उत्तम था। महाराज उत्तान पाद छोटी रानी को ज्यादा प्रेम करते थे, सारा अधिकार छोटी रानी के ही हाथमें था। बड़ी रानी और उसका पुत्र उपेक्षित रूप से उस घर में, छोटी रानी के आश्रित बन कर रह रहे थे। रानी तो समझदार थी, राजा को छोटी रानी के चँगुल में फँसा देखकर उस घर के अन्दर अपना स्थान समझ गई थी, इसलिये घर-ग्रहस्थी के झगड़ों को छोड़ अपने दिन पूजा-पाठ में व्यतीत करती थी। वह किसी बात में दखल देना या अपने अधिकारों के लिये लड़ना-झगड़ना पसन्द न करती थी। वह बुद्धिमती थी वह समझती थी, कि जब राजा ने ही छोटी रानी के प्रेम में आसक्त होकर न्याय-अन्याय का विचार करना छोड़ दिया है तो व्यर्थ घर में अशान्ति करने तथा अपने को और अपमानित कराने से क्या फ़ायदा है।

ध्रुव नासमझ बालक था, वह यह सब बातें समझता न था वह समझता था जैसा उत्तम वैसा ही मैं। राजा जैसे उत्तमके पिता वैसे मेरे पिता, वह हमेशा उत्तम की बराबरी किया करता था। छोटी रानी यह बर्दाश्त नहीं कर सकती थी कि वह मेरे बेटे की

बराबरी करे। अक्सर वह उसे फटकार देती थी, जिससे वह माँ के पास रोता हुआ जाता था, माँ के कलेजे पर, बच्चे के साथ भी छोटी रानी का यह व्यवहार देख कर बडी चोट लगती थी, किन्तु बच्चेके सामने अपना दुःख प्रगट नहीं करती थी, कि कहीं बच्चेको छोटी रानी तथा अपने पिता के प्रति विरक्ति न हो जाये। वह हमेशा उसी का दोष निकाल उसे धमका दिया करती थी। इसी प्रकार दिन बीतते जा रहे थे, छोटी रानी और उत्तम के सुख से, और बड़ी रानी और ध्रुव के दुःख से।

अब ध्रुव पहले से कुछ समझदार होगया था वह कुछ कुछ अपनी माँ के दुःख को समझने लगा था, वह अपनी छोटी माँ के सामने बहुत चौकन्ना रहता और ख्याल रखता था कि उनकी मर्जी के खिलाफ़ कोई काम न हो जाय जिस से वह नाराज़ हों।

एक दिन राजा उत्तानपाद राजसभा में अपनी गद्दी पर बैठे थे। खेलते हुए उत्तम और ध्रुव वहाँ आ गये, उत्तम जाकर पिता की गोद में बैठ गया। उत्तम को गोद में बैठा हुआ देख. ध्रुव का मन भी पिता की गोद में बैठने को ललचाया. छोटी रानी के क्रोध को भूल वह भी पिता को गोद में जा बैठा। इतने में सुरुचि वहाँ आ गई। ध्रुव को पिता की गोद में बैठा देख उसके नेत्रों से ज्वाला निकलने लगी उस ने ध्रुव की बांह पकड़ ढकेल दिया और बोली—यह गोद तेरे बैठने के लिये नहीं है, तेरा जन्म दूसरी माता की कोख से हुआ है। यह मेरे बच्चों के लिये है। अगर तुझे इस गोद में बैठने की आकाँक्षा है तो जा तपस्या कर और उस जन्म

में मेरी कोख से जन्म ले तब यह गोद प्राप्त कर सकेगा। बालक बड़ा अप्रतिभ हुआ, वह इस प्रकार भाई और पिता के सामने अपने ही पिता की गोद में बैठने के क़सूर में अपना, और अपनी माता का इतना बड़ा अपमान सह न सका। वह अपनी माँ के पास जा सिसक-सिसक रोने लगा, माँ के पूछने पर उस ने सारा क़िस्सा कह सुनाया कि पिता की गोद में बैठने पर छोटी माँ ने मेरा इस प्रकार तिरस्कार किया। इस मे मेरा क्या क़सूर था ? क्या वे उत्तम के समान मेरे पिता नहीं हैं, उत्तम भी तो गोद में बैठा था उसे तो किसी ने कुछ नहीं कहा।

बेटे की बात सुनकर सुनीति अपने आँसुओं को न रोक सकी, माँ-बेटे दोनों एक दूसरे से चिपट कर रोने लगे, कुछ देर रोकर जब उनका जी कुछ हल्का हुआ तो सुनीति हमेशा के समान उसी को दोषी न बना सकी। अब ध्रुव सात वर्ष का बालक होगया था, दोष किसे कहते हैं वह अब समझने लगा था, रानी ने भी समझा अब उसे भुलावे में नहीं रक्खा जा सकता। आख़िर उसे सत्य बात बतानी पड़ी। उसने कहा—"हे पुत्र ! यह सत्य है, तू ने पूर्व जन्म में कोई पाप किया था जिस से कि तूने मुझ अभागिनी के कोख से जन्म लिया, मैं पूर्व जन्म के पाप के कारण पति की उपेक्षिता हूँ। और छोटी रानी सुरुचि को पूर्व जन्म के पुण्य के कारण पति का प्रेम और आदर मिला है, उत्तम ने सुकर्म किया था, जिस से उसने सुरुचि के पेट से जन्म लिया। इस कारण वह पिता के पूर्ण प्रेम का अधिकारी हुआ और तू उत्तम के समान ही उनका पुत्र

होते हुये भी मुझ उपेक्षिता का बेटा होने के कारण उनके प्रेम का अधिकारी नहीं। अस्तु तुम्हें संतोष करना चाहिये। जो प्रारब्ध में होता है वही मिलता है। अगर तुम्हें अपनी इस दशा पर बहुत दुःख है तो तप करो, तथा ईश्वर की आराधना करो। तो तुम पिता की गोद क्या उस परम पिता की गोद में बैठ सकोगे। जिस के लिये ऋषि-मुनि तरसते हैं।

बालक ध्रुव के हृदय में माँ की बात बैठ गई, उसने कहा—"अच्छा माँ मै उस परम पिता की गोद ही प्राप्त करूंगा" उत्तम पिता की गोद और पिता के राज्य का पूर्ण अधिकारी हो, मैं उसमें हिस्सा नहीं बटाना चाहता। मैं ऐसी अनूठी चीज़ प्राप्त करूँगा जो मेरे पूज्य-पिता और बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों को भी प्राप्त नहीं हो सकी। यह कह कर वह जंगल में तपस्या करने चला गया।

सात वर्ष का बालक जिसने मख़मल के फ़र्श से नीचे ज़मीन मे शायद पैर भी न रक्खा हो, पचासों दास-दासियाँ उसकी सेवा में हाज़िर रहते होंगे, वह पैदल ही अकेले बियाबान जंगल में नदी नालों को पार करता हुआ चला जा रहा था, उसे न धूप की चिंता थी न धूल की। कांटों से उसके पैर और शरीर लहू-लुहान हो रहे थे। धूप के कारण उसका शरीर झुलस रहा था। सेरों धूल उसके शरीर में लगा हुआ था। किन्तु वह तो अपनी धुन में अनूठा पद प्राप्त करने के ध्यान में चला जा रहा था। उसे और किसी बात पर ध्यान देने की फ़ुर्सत कहाँ थी। उस धुन में न उसे भूख थी, न प्यास, न नींद, न आराम का ख्याल। चलते-चलते जंगल में उसे

: ३ :

कुनाल

सम्राट अशोक ने प्रथम अपनी तलवार से और फिर अपनी दिव्य-दया से पृथ्वी के महान पुरुषों में अपना नाम लिखाया है। वे अपने युग में समस्त भारतवर्ष के सम्राट थे। इन्हीं के पुत्र राजकुमार कुणाल थे जो अत्यन्त रूपवान् और सुशील थे। बाल्यकाल ही में कंचना नाम की एक सुन्दरी कन्या से उनका विवाह कर दिया गया था। दोनों अपने विनोद और उल्लासमय जीवन से राजमहल को आनन्दित करते रहते थे।

कुणाल को सम्राट बहुत प्यार करते थे और वे कभी उसे आँखों की ओट न होने देते थे। तिष्य-रक्षिता सम्राट की छोटी महिषी कुणाल पर मोहित थी। एक बार उसने कुणाल को एकान्त में पाकर उससे अपनी इच्छा प्रकट की, पर कुणाल ने विनयावनत होकर कहा—आप मेरी माता हैं मैं आपकी ओर नहीं देख सकता महारानी तिष्य-रक्षिता ने रूप और काम के वशीभूत हो कहा—कुमार एक बार मेरी ओर तो देखो कैसा मेरा रूप-यौवन है।

परन्तु कुणाल ने वही जवाब दिया। क्रुद्ध होकर तिष्य-रक्षिता ने कहा—अच्छी बात है। तुमने जिन आँखों से मेरा अपमान किया है-उन्हें समय आने पर नष्ट कर दिया जायगा। वह क्रुद्ध सर्पिणी की भाँति फुफकारती हुई चली गई। अवसर पाकर उसने कुणाल को महाराज से कहकर तक्षशिला भिजवा दिया, वहाँ प्रजा ने

विद्रोह किया था—पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर कुणाल तक्ष-शिला को चल दिये। विद्रोह को दमन करके पञ्जाब का शासन करने लगे। कंचना उनके साथ थी।

२

सम्राट अशोक रोगी हुए। बड़े-बड़े वैद्य यत्न करके हार गए पर महाराज को कोई लाभ न हुआ। उनके पेट में कृमि हो गये थे और सिर में बहुत पीड़ा रहती थी धीरे-धीरे सम्राट को जीवन से निराशा होने लगी।

तिष्य-रक्षिता बड़ी बुद्धिमती थी, उसने आज्ञा की कि राज्य में कोई ऐसा ही रोगी हो तो उसे लाओ, बहुत खोज ढूंढ पर एक कुम्हार मिला, जिसे वही रोग था जो सम्राट को था। महारानी ने उसका पेट चिरवा डाला। उसकी आँतों में बहुत से कीड़े निकले, रानी ने उन्हें भिन्न-भिन्न औषधियों में डाला, पर वे न मरे। जब वह लहसुन के अर्क में डाले गये तो मर गये। इस आविष्कार से रानी बड़ी प्रसन्न हुई और सम्राट से कहा—कि यदि मैं आपको आरोग्य करदूँ तो आप मुझे क्या दें।

सम्राट् ने कहा—तुम्हारे लिए मेरे पास अदेय क्या है, सारे साम्राज्य का अधिपति मैं तुम्हारे अधीन हूँ: तुम्हें क्या चाहिये।

रानी ने कहा—और कुछ नहीं, सिर्फ़ एक दिन का राज्य-शासन चाहिए।

सम्राट ने हँस कर कहा—जब तुम्हारी इच्छा हो एक दिन राज्य-शासन कर सकती हो।

रानी ने सम्राट् को लहसुन का अर्क देना शुरू किया, इससे थोड़े ही दिन में सम्राट् के पेट के कीड़े मर गये और उनके सिर-दर्द का रोग भी जाता रहा, थोड़े दिन में वे बलवान भी हो गये।

एक दिन रानी ने अवसर पा सम्राट् को उनकी प्रतिज्ञा की याद दिलाई और राजमुहर माँगी। सम्राट् ने उसे एक दिनके लिए समस्त भारत का साम्राज्य संचालन का भार दे दिया और राज की मुहर भी देदी।

समस्त भारत का साम्राज्य पाकर रानी ने सिर्फ एक आज्ञा-पत्र तक्षशिला के हाकिम के नाम निकाला। जिसमें लिखा था कि कुणाल की आँखें निकाल कर उसे राज्य से निकाल दो। आज्ञा-पत्र पर राज्य की मुहर कर दी गई। कुछ दिन बाद जब यह आज्ञा-पत्र तक्षशिला पहुँचा तो वहाँ का अधिकारी बहुत चिन्तित हुआ, उसे आज्ञा-पत्र पर सन्देह हुआ। वह समझ ही न सका कि कैसे सम्राट् अपने पुत्र के लिए यह भयानक आज्ञा दे सकते हैं। उसने सन्देह की निवृत्ति के लिए सम्राट् को एक पत्र लिखा। और कुणाल से भी इसकी चर्चा की।

कुणाल ने आज्ञा-पत्र को पढ़ कर कहा—राज मुहर को मैं पहचानता हूँ, आप राजाज्ञा का पालन कीजिए।

परन्तु हाकिम ने कहा—कुमार, भला मैं कैसे इस निर्दय काम को कर सकता हूँ, मैं राज-द्रोह करता हूँ आप मुझे दण्ड दीजिये।

कुणाल ने कहा—नहीं, नहीं, राजाज्ञा का उलंघन नहीं हो सकता। मैं सम्राट और पिता दोनों की आज्ञा मानकर अपनी

आँखें स्वयं निकाल देता हूँ। यह कह कर कुमार ने विषम साहस से अपनी आँखें निकाल डालीं, और अन्धा हो गया।

कंचना ने सुना तो पछाड़ खाकर धरती में गिर पड़ी, परन्तु कुणाल ने उसे धैर्य बंधाया और कहा—अब मुझे राज्य से बाहर जाना चाहिये। बहुत समझाने पर भी कंचना ने कुणाल का साथ न छोड़ा। उसने कहा—मृत्यु ही हमें अलग कर सकती है। चलो, हम इस पापी राज्य से निकल चलें, और वे दोनों राज महल से निकल गये कचना ने अन्धे राजकुमार का हाथ पकड़ा, लोग करुणा से उन्हें देख रहे थे, और वे चुप-चाप सब वैभव त्याग कर पदल जा रहे थे।

आज्ञा पालन की सूचना शासक ने भेज दी थी। जिसे महारानी ने ऊपर-ही-ऊपर ले लिया। और यह बात उड़ादी कि कुणाल और कंचना भिक्षु हो गये। सम्राट् को प्रिय-पुत्र के वियोग का दुःख तो हुआ, परन्तु उन्होंने यह समझ कर कि पुत्र ने धर्म-मार्ग का अनुसरण किया है सन्तोष कर लिया।

दोनों प्राणी देश-विदेश घूमते फिरे। दोनों गान-विद्या में प्रवीण थे। रूप भी साधारण न था, जहाँ जाते, भीड़ लग जाती। उनके तेज और लक्षणों से उनका राज-वंशी होना प्रगट होता था पर वे किसी को अपना परिचय नहीं देते थे।

धीरे-धीरे १५ वर्ष बीत गये। वे समस्त दक्षिण भारत का भ्रमण कर चुके थे, उनकी वासना मिट चुकी थी, वे संसार से विरत हो चुके थे। घूमते-घूमते वे बंगाल में आये। और फिर एक दिन

२० वर्ष बाद सन्ध्या समय पटने में आ पहुँचे। एक अतिथिशाला में उन्होंने डेरा डाला—और नगर में गा-गा कर भीख मांगने लगे। उनका रूप-रङ्ग सब बदल चुका था, पर उनकी आकृति में ऐसी मनोहरता थी और उनका कण्ठ स्वर ऐसा मधुर था जिसे सुनकर लोग मोहित हो जाते थे। सम्राट की गजशाला का अध्यक्ष गान-विद्या का बड़ा प्रेमी था. उसने उनका गाना सुनकर कहा—

"कौन हो भाई"

"बटोही हैं"

"कहाँ रहते हो ?"

"आज यहां कल वहां"

"कहाँ से आ रहे हो"

"योंही घूमते फिरते हैं"

उसने उन्हें डेरे में सोने की जगह दी। और दया करके भोजन भी दिया। रात भर वे आराम से सोये, प्रभात के समय कुणाल ने भैरवी की एक तान ली। सम्राट् जाग चुके थे। वह तान उनके कान में पड़ी। उन्हें ख्याल आया, कि कुणाल ऐसा ही गाता था। यह कौन गायक है। उन्होंने द्वारपाल को भेज कर गायक को तुरन्त हाजिर करने की आज्ञा दी।

दोनों ने सम्राट् के सामने आकर उनकी आज्ञा से गाना गाया।

सम्राट ने पूछा—"कौन हो !"

गरीब भिखारी हैं महाराज, लोगों को गाना सुनाते हैं, जो कोई खाने को दे देता है उसी में निर्वाह करते हैं। बात कहते-

कहते कुणाल का गला भर आया। महाराज को सन्देह हुआ, उन्होंने कहा—नहीं, नहीं, सच कहो: तुम कौन हो।

कुणाल अब अपने को न रोक सका, "मैं कुणाल हूँ, कहकर वह महाराज के पैरों पर गिर गया। सम्राट् ने उसे उठाकर छाती से लगाकर कहा—"अरे, पुत्र, तुम्हारी यह दशा कैसे हुई ?"

तब कुणाल ने सब बातें कह सुनाईं। दर्बारी धन्य-धन्य कहने लगे। महाराजा अविरल आँसू बहाते रहे, पर तुरन्त ही क्रुद्ध होकर उन्होंने लाल-लाल आँखों से मन्त्री की ओर देखकर कहा—"किसने आज्ञा पत्र लिखा था।"

सब पुरानी बातों की खोज हुई। रानी ने अपना दोष स्वीकार कर लिया। सम्राट् ने तत्काल आज्ञा दी—रानी की आँखें निकाल ली जायँ और फिर उसके शरीर के एक-एक अङ्ग काटे जायँ।

दर्बार में सन्नाटा था। सम्राट से कुणाल ने कटिबद्ध होकर कहा—महाराज, सेवक की एक प्रार्थना है।

सम्राट ने कहा—कहो पुत्र तुम्हारी प्रार्थना अवश्य पूर्ण होगी।

महाराज, पिताजी, माता को क्षमा कर दीजिए। संसार के नेत्र खोकर मैंने दिव्य दृष्टि पाई है, मैं माता का बहुत उपकृत हूँ। सभासद धन्य-धन्य कह उठे और कुणाल की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे सम्राट् ने पुत्र की प्रार्थना स्वीकार की, पर फिर उन्हें राज-पाट से विरक्ति हो गई। और उन्होंने साम्राज्य कुणाल को सौंप सन्यास ग्रहण कर लिया।

राजकुमार चूड़ाजी

मेवाड़ के महाराणा लाखा जी महावीर पुरुष थे। उन्होंने बड़े-बड़े युद्ध फ़तह किये, और बड़ी-बड़ी लड़ाइयां लड़ी थीं। जीवनके सब दिन व्यतीत करके अब वे वृद्ध हो चले थे। उनके सारे शरीर पर घावों के चिन्ह थे, और वे राजपूती शान के जीते-जागते अवतार थे। राणाजी के पाटवी कुमार का नाम चूड़ाजी था। चूड़ाजी में पिता के सभी गुण मौजूद थे, वे बड़े साहसी, सत्यव्रती, चतुर और विनयी थे। उनकी सत्यता की ऐसी धाक थी कि उनके मुँहसे निकली बात पत्थर की लकीर समझी जाती थी। लोग समझते थे, चाहे सूरज पश्चिम में उगे, पर चूड़ाजी की बात इधर-उधर नहीं हो सकती।

दरबार लगा था। राज्य के सब काम यथावत हो रहे थे। सब सर्दार अपने-अपने आसनों पर बैठे थे, चोबदार ने अर्ज़ की—कि मारवाड़के राव रणमल जी के पुरोहित आए हैं। राणा जी ने उन्हें दर्बार में आदर-पुर्वक ले आने का आदेश दिया। दर्बार में आकर पुरोहित ने राणाजी को आशीर्वाद दिया, और कहा—मारवाड़के राव रणमल जी ने आपकी सेवा में नारियल भेजा है। वे पाटवी-कुमार चूड़ाजी के साथ अपनी पुत्री की सगाई किया चाहते हैं। यह सुनकर महाराणा ने हँसकर अपनी सफेद डाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा—ठीक है भई, अब इस सफ़ेद डाढ़ी वाले के लिये थोड़े

ही कोई नारियल भेजेगा। दर्बारी लोग राणा जी की बात सुनकर हँस दिये।

चूड़ाजी भी दर्बार में उपस्थित थे। राणाजी की बात सुनकर वे नीची गर्दन करके कुछ सोचने लगे। राणा ने दर्बारी लोगों से इस सम्बन्ध की सलाह ली तो सभी ने कहा—बहुत अच्छा, मारवाड़ का घराना सब भाँति उत्तम है। परन्तु जब चूड़ा जी को आगे आकर नारियल लेने और टीका कराने को बुलाया गया तो उन्होंने हाथ जोड़कर पिता से कहा—पिता जी, आपने यद्यपि हंसी में इस नारियल के लिए इच्छा प्रकट की है—परन्तु मारवाड़ की कन्या अब मेरी माता हो चुकी। उसके साथ आप ही को विवाह करना होगा।

चूड़ाजी की यह बात सुनकर सर्वत्र सन्नाटा छा गया। राणाजी का मुँह उतर गया। वे बड़ी द्विविधा में पड़ गये। इस आयु में विवाह करना हास्यास्पद था, और नारियल लौटा देने में राव रणमल से दुश्मनी मोल ली जाती थी—जो किसी भी हालत में राणाजी को स्वीकार न था। उन्होंने तथा दर्बारियों ने चूड़ाजी को बहुत समझाया-बुझाया, परन्तु चूड़ा जी ने कहा—मैं पिता जी की आज्ञा से अभी सिर काटकर दे सकता हूँ—परन्तु मारवाड़ की कुमारी तो मेरी माता हो चुकी।

राणा जी को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने कहा—अच्छी बात है, राव रणमल का नारियल तो मेवाड़ लौट नहीं सकता। मैं ही मारवाड़ की पुत्री से ब्याह करूँगा, परन्तु चण्ड—याद रखो,

इस कुमारी से जो सन्तान होगी वही राज्य का अधिकारी होगा तुम्हारा पाटवी पद तब न रहेगा।

पिता की इस धमकी को सुन चूड़ाजी ने हँस कर कहा—पिता जी मैं आप के चरणों की सौगन्ध खाकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं मारवाड़ की माता के पुत्र को राजा मानकर उसी भांति उनकी सेवा करूँगा जैसे आपकी करता हूँ।

चूड़ाजी की यह प्रतिज्ञा सुनकर सब दर्बारी धन्य-धन्य कर उठे। राव रणमल के पुरोहित ने भी धन्य धन्य कहा—राजकुमार के इस राज्य-त्याग की चर्चा आग की भांति राजपूताने में फैल गई। चारण लोग कविता रच-रच कर उसका बखान देश-विदेश में करने लगे।

६५ वर्ष के वृद्ध महाराणा के साथ १२ बरस की मारवाड़ के राजा की पुत्री का विवाह हो गया। और विवाह के दो बरस बाद ही उसके राज पुत्र हुआ। जिसका नाम मोकल रखा गया। धीरे-धीरे पांच साल बीत गये। इसी बीच में राणा जी को एक बड़े भारी युद्ध में जाने की आवश्यकता पड़ी। राणा जी ने सोचा—चूड़ाजी इन सात वर्षों में अपनी प्रतिज्ञा भूल गया होगा। उन्होंने चूड़ाजी को एकान्त में बुलाकर कहा—पुत्र मैं बड़े कठिन मोर्चे पर जा रहा हूँ। बुढ़ापे की उम्र है क्या जाने लौटना हो या नहीं. मैं चाहता हूँ कि तुम्हें राज-तिलक देकर और मोकल को तुम्हे सौंपकर मैं निश्चिंत हो जाऊँ।

चूड़ाजी ने कहा—पिताजी, राजा तो मोकल ही होंगे। और

मैं उनकी सेवा करूँगा। मेरी प्रतिज्ञा अटल है। महाराणा कुछ न बोले। वे युद्ध करने को चले गये। चूड़ाजी ने धूम-धाम से ५ वर्ष के बालक मोकल को गद्दी पर बैठाया और आप उनके नाम से राज-काज देखने और सब प्रबन्ध-व्यवस्था करने लगे। उन्होंने राज्य की ऐसी व्यवस्था की कि सब तरह शान्ति और व्यवस्था हो गई और प्रजा सुखी और आनन्द से रहने लगी।

परन्तु मोकल के मामा राव जोधाजी के मन में राज्य का लोभ आ समाया। उन्होंने सोचा भाञ्जा तो अभी नादान है और उसकी माँ मेरी बहिन है वह भी बे समझ है यह अच्छा मौक़ा है, मैं जाकर ऐसी खटपट करूँगा कि चूड़ा को निकलवा कर बाहर करूँगा और राज्य को हथिया कर अपने क़ब्ज़े करूँगा। यह सोचकर बाप-बेटे दोनों ने मारवाड़ से चलकर मेवाड़ के राज-महल में डेरे आ जमाए। चूड़ाजी ने उनका खूब आदर सत्कार किया। परन्तु वे तो चूड़ाजी की जड़ काटने ही आए थे, वे मौक़ा ढूंढते रहे और जब मौक़ा पाते मोकल की माता से चूड़ाजी की बुराइयाँ करते थे। धीरे-धीरे दोनों बाप-बेटों ने मिलकर भोली-भाली रानी के दिल में यह बात बैठा दी कि चूड़ाजी तुम्हारे बेटे को मरवाकर स्वयं गद्दी हथियाना चाहता है। उसपर एक दिन रानी ने चूड़ाजी को बुलवा कर कहा—तुम मेरे पुत्र को मरवाने के लिये जो-जो चालें चल रहे हो मैं सब जानती हूँ। अब तुम्हारे ऊपर मुझे कुछ भी भरोसा नहीं रहा। तुम्हें राज्य के लोभ ने सताया है। सो अब तुम्हारा मेवाड़ में रहना नहीं होगा।

चूड़ाजी को बहुत दुख हुआ—उन्होंने हाथ जोड़ नम्रता से कहा—जैसी माता जी की आज्ञा। आप अपना राज्य सम्हालिए, आज से चित्तौर का भाग्य आपके आधीन है। मैं कहीं भी जाकर आध सेर आटा कमा लूंगा। इतना कह और प्रणाम कर वे महल से चल दिये।

मेवाड़ से चलकर वे सीधे मालवे के सुलतान के पास पहुँचे और एक नौकरी माँगी। सुलतान ने चूड़ाजी की बड़ी खातिर की और उन्हें अपनी सेना में ऊँचा पद दिया। खर्च के लिए जागीर लगा दी। वे धीरज से अपने दिन काटने लगे। पर रानी के दुर्व्यवहार का उनको बड़ा दुःख हुआ।

उधर चूड़ाजी के जाते ही जोधाजी और राव रणमल की आ बनी। रावजी मोकल को गोद में लेकर गद्दी पर बैठते थे। यह देखकर मेवाड़ के सरदारों की आँखों में खून उतर आता था। पर वे मन मसोस कर रह जाते थे। उधर जोधाजी मन्त्री बनकर राज के कर्ता-धर्ता ही हो गये थे। वे बड़े-बड़े ओहदों पर से मेवाड़ वालों को दूर करके, मारवाड़ वालों को भरती कर रहे थे. थोड़े ही दिनों में जहां देखो वहीं सेना में और दरबार में जिम्मेदार पदों पर मारवाड़ ही के आदमी दिखाई देने लगे। राज-माता को तो कुछ खबर ही न थी, और वह खुश थी कि अब पुत्र का संकट टल गया. पर मोकल की धाय सब मतलब समझ गई थी। वह चुप-चाप राव रणमल और जोधाजी के कामों को बारीकी से देखा करती थी. जब उसे दोनों की सारी चालाकियों का पूरा-पूरा पता

चल गया, तब अवसर पाकर उसने एक दिन राज माता से कहा—महारानी जी, आपने चूड़ाजी को राज से निकाल कर अपने लिए काँटे बो दिये। जहाँ देखो, वहीं राज्य में मारवाड़-ही-मारवाड़ के आदमी भर रहे हैं। बेचारे चित्तौड़ वाले मारे-मारे फिर रहे हैं। अब राज्य जाने मे देर नहीं है, बालक राजा की जान खतरे में है अब भी संभलो; और राज्य की रक्षा करो।

यह सुनकर रानी ने पिता के पास जा सब बातों की हक़ीक़त पूछी; सुनकर राव रणमल ने कहा—राज-काज की बातों में औरतों को दखल देने का कोई काम नहीं है, तुम जाकर घर बैठो।

रानी ने भी तेज़ी से कहा—आप मेरे लड़के के नाम से मन-मानी कर रहे हो।

इस पर बूढ़े रणमल बोले—सो तो करेंगे। राज हमारा और हमारे बाप का है, रोटियाँ खानी हो तो चुपचाप महल में पड़ी रहो वरना मोकल से भी हाथ धोओगी। यह सुन रानी तो लोहू की घूँट पीकर चुप-चाप चली आई। उधर रणमल ने उस पर पहरा बैठा दिया। और चूड़ाजी के भाई रघुदेव को धोखे से मरवा डाला। अब महारानी की आँखें खुलीं और बाप तथा भाई की करतूत समझी।

उसने धाय से सलाह कर चूड़ाजी को खत लिखा, और सब हक़ीक़त बयान करके बहुत बहुत बिनती करके लिखा; अपनी माँ की ग़लती का खयाल न कर आकर पिता के राज्य और भाई के प्राणों की रक्षा करो। तुम वीर हो, वीर से याचना करने से कोई विमुख नहीं होता।

पत्र को अत्यन्त गोपनीय रीति पर पुरोहित के द्वारा चूड़ाजी के पास, मालवे में भेज दिया गया। पत्र पढ़कर चूड़ाजी ने गुप्त सन्देश भेजा।

माता जी, हुआ सो हुआ। आप धीरज धारण करें तथा दान के बहाने आस-पास के गाँवों में अपने विश्वास के आदमी भेजा कीजिये। परन्तु दिवाली के दिन मोकल को साथ लेकर गोमुण्डा अवश्य आना, वहाँ मैं मिलूँगा। इसके बाद सब काम ठीक कर लिया जायगा।

इसके बाद चूड़ाजी धीरे-धीरे अपने आदमी चित्तौड़ भेजने लगे। उनके भेजे हुए बहुत से भील छिपकर चित्तौड़ में रहने लगे। और कितने ही फ़ौज और पुलिस में भरती हो गये। उन्होंने बहुत से राजपूतों को लड़ने को तैयार कर लिया।

इधर रानी ने चूड़ाजी की बताई तरकीब काम में ली। और दिवाली के दिन मोकल को लेकर गोमुण्डा में चूड़ाजी से जा मिली। इसके बाद चूड़ाजी अपने आदमियों के साथ चित्तौड़ की ओर चले। फाटक पर पहरेदारों ने रोका तो उन्होंने कहा—हम महाराणा के आदमी हैं, उनके साथ बाहर गये थे; अब लौट रहे हैं। यह सुनकर पहरे वाले चुप रहे, सब लोग क़िले में घुस गये।

परन्तु रणमल जी को इन पर सन्देह हो गया और फ़ौरन ही लड़ाई छिड़ गई। चूड़ाजी के आदमी ढूँढ ढूँढ कर मारवाड़ के आदमियों को मारने लगे। चूडाजी खुद वीरता से लड़े और कई घाव खाके पर उन्होंने क़िले के भाटी सरदार को मार कर क़िले पर

अपना अधिकार कर लिया। जोधाजी रातों-रात चित्तौड़ से भाग खड़े हुए।

रणमल की एक प्रेमिका थी, वह उसके घर में अफ़ीम के नशे में पड़े थे। मौक़ा देख प्रेमिका ने उन्हीं की पगड़ी से उन्हें खाट से बांध दिया, लड़ाई का हो-हल्ला सुनकर उन्हें होश आया और वे पलङ्ग समेत उठ खड़े हुए। परन्तु एक राजपूत ने उनका वहीं काम तमाम कर दिया। इस प्रकार कुमार चूड़ाजी ने बालक राजा के प्राण और गद्दी की रक्षा की। आज भी उनकी सन्तान चूड़ावत कहाती है, और मेवाड़ के दरबार में उनका स्थान गद्दी के दाहनी ओर है।

वीर बालक हक़ीक़त राय

हक़ीक़त राय का जन्म पञ्जाब प्रान्त के स्यालकोट नामी नगर में हुआ था। यह वह समय था जब भारतवर्ष का शासन सूत्र मुग़लों के हाथ में था और शाहजहाँ राजगद्दी पर विराजमान थे। हक़ीक़त राय अपने माता-पिता का एक मात्र पुत्र था वह जाति का क्षत्रिय था। अभी यह छोटा ही था कि उसके पिता लाला बागमल ने उसे एक मसजिद में पढ़ने के लिये दाख़िल करादिया। उन दिनों संस्कृत की शिक्षा का कोई समुचित प्रबन्ध न होने के कारण हक़ीक़त राय को भी फ़ार्सी और उर्दू पढ़नी पड़ी। होनहार तो वह था ही, फ़ार्सी को भी वह बहुत जल्दी समझने लगा। यहाँ तक कि थोड़े ही दिनों में वह पुराने शिष्यों से भी बाज़ी ले गया। हक़ीक़तराय को इस प्रकार सबसे आगे बढ़ते देखकर उसके सहपाठी उससे दिल-ही-दिल में जलने लगे।

एक दिन मौलवी साहब बालकों को कुछ पाठ याद करने के लिये देकर किसी ज़रूरी काम के लिये बाहर चले गये। उन्हें गये अभी थोड़ी ही देर हुई थी कि बालकों ने शोर-गुल मचाना शुरू कर दिया। हक़ीक़त राय इस शोर-गुल से अलग एक कोने में चुप-चाप बैठकर अपना पाठ याद कर रहा था। एक लड़का जो कि मुसलमान था, इस डर के मारे कि कहीं हक़ीक़त पाठ याद करके सुना न दे उसके पास जाकर कहने लगा—क्यों रे, क्या सारे दिन

पढ़ता ही रहेगा ? बन्द कर किताब ! बड़ा पढ़ने वाला बना है। हक़ीक़तराय किसी की बात में दख़ल नहीं देता था। और न यह चाहता था कि उसे कोई सताए !

उसने धीरे से कहा—देखो जी, फ़िज़ूल में दङ्गा मत करो नहीं तो दुर्गा भवानी की सौगन्द अच्छा न होगा।

भला एक हिन्दू बालक के मुँह से एक मुसलमान यह शब्द कब सुनने को तैयार था। उसने हक़ीक़त का हाथ पकड़ कर कहा—तेरी दुर्गा भवानी की ऐसी-तैसी। बोल किताब रखता है कि नहीं। बड़ा देवी वाला बना है। देखूँ तो तेरी देवी कहाँ है और मेरा क्या बिगाड़ती है ? ऐसी देवियाँ रोज़ हमारी मस्जिद में झाड़ू देती है।

हक़ीकत राय को यह बहुत बुरा लगा। वह झट अपने हाथ छुड़ाकर बोला—'यह आँखें किसी और को दिखाना। जो बात तुम मेरी देवी माता की शान में कह सकते हो, वह मैं भी तुम्हारी फ़ात्मा की शान में इस्तैमाल कर सकता हूँ।

मस्जिद में तहलका मच गया। लड़के पहले ही हक़ीक़त राय से द्वेष रखते थे। जब उन्होंने रसूलज़ादी की तौहीन सुनी तो उन्हें और भी गुस्सा चढ़ गया और वे जल-भुनकर ख़ाक हो गये !

एकाएक सब मिलकर हक़ीक़त पर टूट पड़े। हक़ीक़त यवन बालकों के इस प्रकार के आकस्मिक आक्रमण से हैरान हो गया। बेचारा अकेला क्या करता ? चुप-चाप बैठ रहा। उसे पूरा विश्वास था कि मैं निर्दोष हूँ, परन्तु वहाँ न्याय करने वाला कौन था। सभी एक रंग में रंगे हुए थे। हाँ मौलवी साहब से कुछ आशा थी,

इसी प्रकार बारी-बारी से सभी राजकुमारों से प्रश्न किया गया, और सबका यही जवाब सुनकर धनुष रखवा दिया गया। यही हाल कौरवों का भी हुआ। अन्त में अर्जुन को बुला कर कहा—अब तुम निशाना साधो। जब अर्जुन निशाना साध कर तैयार हुए तो गुरु जी ने कहा—कि तुम्हें गिद्ध दीखता है।

अर्जुन ने कहा—जी नहीं, मुझे तो सिर्फ उस की आँख ही दीखती है।

इस पर प्रसन्न होकर गुरु जी ने कहा—तुम निशाना मारो।

तब अर्जुनने गिद्ध की आँखमें निशाना मार दिया। गुरुजी ने खुश होकर कहा—अर्जुन तुम्हीं मेरी इच्छा को पूर्ण करोगे।

एक दिन गुरु जी गँगा में नहा रहे थे कि एक ग्राह ने आकर उनकी टाँग पकड़ ली। उन्होंने चिल्लाकर राजकुमारों से कहा—बचाओ-बचाओ। इस पर सब कोई घबरा गये। सिर्फ अर्जुनने बाण मार कर ग्राह का मुंह भर दिया। तब द्रोणाचार्यने प्रसन्न हो अर्जुन को ब्राहास्त्र दिया और कहा—कि खबरदार इसे मनुष्य पर मत चलाना। अर्जुन वह अस्त्र प्राप्त कर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

सब कुमार खूब समर्थ और जानकार हो गए तब गुरुजी ने महाराज धृतराष्ट्र से कहा—कुमार सब प्रकार की शस्त्र विद्या में पारँगत हो गये हैं। आप इनकी परीक्षा ले लीजिये। बस राजाकी आज्ञा से सब कुमारोंकी परीक्षा की तैयारी की गई। बहुत सुन्दर रंगभूमि बनवाकर उसमें सब नगर निवासी और पुरवासी देखने को बुलाए गए, राजपरिवार भी देखनेको आया। चारों तरफ भारी

भीड़ जमा होगई। बाजे बजने लगे और जब सब लोग यथास्थान बैठ गये तब राजकुमारों ने गुरुजी की आज्ञा से अपने-अपने कर्तव्य दिखाने शुरू कर दिये। लोग आश्चर्य से कुमारों का हस्त लाघव देखने लगे। धनुषबाण, तलवार खड्ग, परिघशूल, गदा सभी भाँति के शस्त्रों से युद्धके करतब दिखाए गए। अन्त में भीम और दुर्योधन गदा लेकर अखाड़े में उतरे। दोनों परम तेजस्वी और निपुण थे, दोनों की सफाई कौशल देखकर लोग उत्साहसे वाह २ करने लगे। विदुर धृतराष्ट्र को और कुन्ती गंधारी को सभी बातें बताने लगी। जब गुरूजी ने देखा कि दोनों वीर लड़ते २ क्रोध में भर गये हैं। तब गुरुजी के इशारे से अश्वत्थामा ने आकर दोनों का निवारण किया।

जब सब कुमार अपना २ कर्तव्य दिखा चुके तो गुरुजी ने बीच रंगभूमिमें खड़े हो उच्च स्वरसे कहा, अब आप लोग अर्जुन को देखिए, जो इन्द्र और विष्णु के समान सब शस्त्रोंके ज्ञाता हैं।

तब अर्जुन धीरे २ धनुष बाण लिये तरकस, कसे, गोह के चमड़ेका दस्ताना पहिने मन्च पर आये—तो दर्शक गण प्रसन्नता से वाह-वाह कहने लगे। चारों ओर बाजे बज उठे। लोग भांति भाँति की बातें करने लगे। जब कोलाहल कुछ शान्त हुआ तो अर्जुन अपनी शस्त्र विद्या दिखाने लगे। पहिले उन्होंने आग्नेय अस्त्र से आग लगा दी, फिर वारुणेय अस्त्र से उस आगको बुझा दिया। वायव्य अस्त्रसे हवा चलाकर पर्जन्यास्त्रसे बादल बनादिये अन्तर्धान अस्त्र चलाकर वे छिप गये, फिर वे बहुत लम्बे, कभी

मोटे कभी पास और कभी दूर दीखने लगे। अब उन्होंने भरा घड़ा मुर्गी का अण्डा आदि निशानों हर ऐसे हल्के हाथ से पैने बाण मारे कि वे हिले भी नहीं। फिर घुघची आदि सूक्ष्म निशानों को उड़ाया, फिर लोह पिण्ड आदि भारी निशानोंको उड़ाया। फिर घूमते हुये लोहे के सुअर के मुँहमें पाँच बाण मारे। इसी से लटकते सींग पर इक्कीस बाण मारे। इसके बाद खड्ग युद्ध, रथ-युद्ध धनुर्युद्ध, गदा-युद्ध के पैंतरे और हाथ दिखाने लगे। सब लोग धन्य-धन्य कहने लगे।

इसके बाद यह उत्सव खत्म होने ही पर था कि रङ्गभूमि के द्वार पर कोलाहल सुनाई दिया। अर्जुन की तारीफ सुनकर कौरव लड़ने को तैयार हो गये। उनकी प्रेरणा से महाबली कर्ण खम-ठोक कर रङ्गभूमि में भारी-भारी सांस लेते हुए आ खड़े हुये। उनके हाथ में धनुष और कमर में तलवार लटक रही थी। क्रोध से उनकी आंखें लाल हो रही थीं, और दाँत फड़क रहे थे। उन्होंने मेघ की भाँति गर्ज कर कहा—हे अर्जुन तुमने जो कुछ कर्तब दिखाये हैं उन सब को तथा उनसे भी बढ़कर और अद्भुत कर्तब मैं दिखा सकता हूँ, तुम ज्यादा घमण्ड में मत रहना। यह कहकर उसने वे सब काम करके दिखा दिये। यह देख दुर्योधन ने उसे गले से लगा कर कहा—तुम आज से हमारे मित्र हुये।

कर्ण ने कहा—अच्छी बात है,पर अभी तो मेरी इच्छा अर्जुन से दो-दो हाथ करने की है। अर्जुन में दम हो तो आगे आवे।

यह सुनकर अर्जुन क्रोध में फुफकार कर बोले—कर्ण! जो

लोग बिना बुलाये आते हैं और बिना कहे बोलने लगते हैं, उनकी जो गत बनती है--वही तुम्हारी होगी, ज़रा ठहरो।

कर्ण ने कहा— यह रङ्गभूमि सभी के लिये है, कुछ तुम्हारे ही लिये नहीं। क्षत्रियों को बल का घमण्ड होता है, वे बकबाद नहीं करते, ठहरो—मैं अभी तुम्हारा सिर काट कर धरती पर गिराये देता हूँ। यह सुनते ही अर्जुन कर्ण से युद्ध करने को मैदान में आ धमके। धृष्टराष्ट्र के पुत्र कर्ण की ओर, और द्रौण, भीष्म, पाण्डव अर्जुन की ओर खड़े हुये। कुन्ती के दोनों ही पुत्र थे। पर वे कह कुछ न सकती थीं। वे दोनों पुत्रों का झगड़ा देख बेहोश हो गईं।

जब दोनों वीर अखाड़े मे उतर आये, तब द्वन्द युद्धके मध्यस्थ कृपाचार्य ने कहा—ये अर्जुन कुरुवंश में उत्पन्न महाराज पाण्डु के पुत्र हैं। अब तुम बताओ, तुम किस माता-पिता के पुत्र हो? किस राजवंश में तुम्हारा जन्म हुआ है—क्योंकि राजकुमार अज्ञात कुलशील से नहीं लड़ते। न नीच वंश वाले से लड़ते हैं।

यह सुन कर कर्ण का सिर नीचा हो गया, परन्तु दुर्योधन ने कहा—आचार्य, राजवंशी पुरुप, वीर पुरुष और सेनापति ये तीनों राजा हो सकते हैं। अर्जुन यदि राजा के सिवा किसी से लड़ना नहीं चाहते तो मैं अभी कर्ण को अंगदेश का राजा बनाता हूँ। दुर्योधन ने उसी समय कर्ण को स्वर्ण सिंहासन पर बैठा कर ब्राह्मणों द्वारा मन्त्र पाठ करा कर तुरन्त ही कर्ण को अंगदेशका राजा बना दिया, और फ़ौरन ही उस पर छत्र लगाया गया, और

चवर होने लगा। कर्ण ने गद्-गद् कण्ठ से कहा—राजन्, आपने मुझे राजा बनाया है इसके बदले में आप मुझसे क्या चाहते हैं आप जो कहें वही आपके लिये करने को तैयार हूँ।

दुर्योधन ने कहा—मैं सिर्फ तुम्हारे साथ दोस्ती चाहता हूँ। यह सुन कर वे दोनों आपस में गले लग कर मिले। यह हो हो रहा था कि सारथी अधिरथ लाठी टेकता, काँपता रंगभूमि में आ पहुँचा, उसका शरीर पसीनेसे तर था और घबराहट के मारे उस के कंधे का कपड़ा खसका पड़ता था, वह पुत्र, पुत्र कह कर सिंहासन पर बैठे कर्ण की ओर लपका। कर्ण पिता को देखते ही धनुष धरती पर रख, स्वर्ण सिंहासन छोड़ पिता के चरणों में आ गिरे। अधिरथ ने अपने आँसुओं से कर्ण के अभिषिक्त सिर को फिर से अभिषिक्त कर दिया

भीमसेन ने चिल्लाकर हंसी उड़ाते हुए—कहा अरे, यह तो इस सारथी का बेटा है फिर कर्ण को लक्षय करके बोला—अरे, सूत पुत्र! तुम तो युद्ध में अर्जुनके हाथ से मरनेके योग्य भी नहीं हो। घोड़ों की रास पकड़ना तुम्हारा काम है. जाओ, अपना काम देखो

तब क्रोध में भर कर दुर्योधन ने भीमसैन को कहा--तुम क्यों इतनी शेखी बघारते हो, अरे शूरवीरों और नदियों के जन्म का वृतान्त कौन जानता है। तुम ही अपने जन्म की बात देखलो। यह सिर्फ अंगदेशके नहीं पृथ्वी के राज्य करने योग्य हैं। तुम में सामथ हो तो रथ पर चढ़ कर युद्ध कर लो।

दुर्योधन की यह बात सुनते ही सब कोई दुर्योधन की तारीफ करने लगे। इतने ही में सूर्य अस्त हो गये। तब कर्ण का हाथ पकड़ कर दुर्योधन रङ्ग भूमि से चल दिये, मशाल हाथ में लेकर सेवक गण आगे-आगे चल दिये द्रोण और पाण्डव भी अपने-अपने स्थानों को लौट गये। दर्शक भी कोई पाण्डवों की कोई कर्ण की, और कोई दुर्योधन की तारीफ करते-करते अपने-अपने घर चले। कुन्ती अपने पुत्र को अँगदेश का राजा होते देख अत्यन्त प्रसन्न हुई। दुर्योधन के मन में जो अर्जुन से भय था, वह कर्ण को पाने से निकल गया। युधिष्ठिर को निश्चय हो गया कि कर्ण के समान धनुर्धर पृथ्वी पर कोई नहीं है।

अब द्रोण ने सब राजकुमारों से कहा—तुम लोग गुरु दक्षिणा में मेरा एक काम करो। राजा द्रुपद ने मेरा अपमान किया था, उसे बाँधकर मेरे सामने लाओ। सब कौरव और पाण्डव पांचाल देश पर चढ़ गये, भयकर युद्ध हुआ। द्रुपद बड़ा वीर था। कौरवों ने वाह-वाही लूटने के लिये सबसे पहिले धावा बोला, द्रुपद ने उन्हें मार भगाया। अब पाण्डव कमर कस कर तैयार हुए, तब अर्जुन ने उन्हें रोककर कहा—आप लोग ठहरें, मैं अभी द्रुपद को पकड़े लाता हूँ। बस अर्जुन युद्ध के लिये चले, नकुल और सहदेव उनके पहियों की हिफाजत करने साथ साथ चले। महावीर भीमसेन आगे-आगे चले, इस प्रकार पाण्डव पाँचालोंकी सेना में विकराल पराक्रम से घुस गये, और देखते-देखते पाँचाल सेना को परास्त कर द्रुपद और उसके पुत्र को बाँध लाये।

द्रुपद को गुरुके सामने बाँध लाकर अर्जुनने गुरु दक्षिणा दी, द्रोण ने द्रुपद को अपने अपमानकी याद दिलाई और उसका आधा राज्य उसे फेर दिया। इस विजय से अर्जुन का यश दिगन्त में व्याप्त हो गया।

पाण्डवों के इस उत्कर्ष को देखकर धृतराष्ट्र को बड़ी फिक्र हुई और वह सोचने लगा कि कहीं ऐसा न हो कि पाण्डव मेरे पुत्रोंका राज-पाट छीन लें। इसी बीचमें पाण्डवोंने प्रतापी सौवीर नरेशको हराया। यवन राज को हराकर वशमें किया। तथा दक्षिण देशको जीत कर कौरवों के राज्य में मिला दिया। इसके बाद राजा धृतराष्ट्र ने कणिक मन्त्री से कूट नीति को पूछ कर पाण्डवों को नष्ट करने की ठान ली। उधर दुर्योधन और उसके मित्र पाण्डवों को मार डालने की सोचने लगे।

सबने मिलकर सलाह की कि कुन्ती सहित पाण्डवों को आग में जलाकर मार डालना चाहिये। धृतराष्ट्र ने भी इशारों से इस बात को पसन्द किया। पर विदुर जी पर यह भेद खुल गया। वे पाण्डवों को कहीं भगा देने की युक्ति सोचने लगे। सोच-विचार कर कौरवो ने पाण्डवों को बारणावत जाने की सलाह दी। कहा—कि वहाँ बड़ा भारी मेला लगता है जाकर अपना मनोरँजन करो। राजा का इशारा पाकर पाण्डवों को बारणावत जाना पड़ा। दुर्योधन ने वहाँ पुरोचन को भेजकर पहिले ही एक लाखका भवन बनवा दिया था। विदुर ने फार्सी भाषा में पाण्डवों को कौरवों की सब बातें समझा दी थीं इससे वे सावधान हो गये। बारणावत जाकर वे

लाख के मकान में ठहरे—और सलाह कर भीतर-ही-भीतर एक सुरङ्ग खोद डाली जो जंगल में निकलती थी। एक दिन वे मौक़ा पाकर मकान में आग लगा—सुरङ्ग के ज़रिए जंगलमें निकल भागे, पुरोचन उसी मकान में जल मरा। एक स्त्री अपने ५ बेटों सहित उस रात उसी घर में सोई थी—वह भी वहीं जल मरी। सब ने समझा कि बेचारे पाण्डव माता सहित जल मरे। जब यह ख़बर हस्तिनापुर पहुँची तो दिखाने को कौरव ख़ूब रोने-पीटने लगे। पर मन मे बहुत खुश हुए।

उधर पाण्डव, सही सलामत एक बन में निकल गए। और विदुर की सहायता से उन्हें वहाँ एक नाव भी मिल गई, जिस के द्वारा वे तुरन्त दूर पहुँच गये। वहां जाकर उन्हों ने भेष बदल लिया, जटा रखली और तपस्वियों की भांति घूमते घामते आगे बढ़े। देश देशान्तर में वे घूमते-फिरते एक चक्रानगरी में पहुँचे और एक ब्राह्मण के घर में डेरा डाला। इस नगर में एक राक्षस रोज एक आदमी का भक्षण करता था उसे भीमसेन ने महा-पराक्रम से मार डाला। फिर द्रौपदी के स्वयंवर का समाचार सुन पांचाल देश को चल दिये। रास्ते में धौम्य ऋषि को पुरोहित बना साथ लेलिया। द्रुपद की राजधानी में आकर एक कुम्हार के घर डेरा डाला। और ब्राह्मणों में राज सभा में जा मत्स्य वेध करके द्रौपदी को व्याहा—फिर अपना परिचय दे, द्रुपद के महल में जा आनन्द पूर्वक द्रौपदी के साथ रहन लगे।